त द् भ व
विशेष प्रस्तुति :
चित्रकार शमशेर
रमण सिन्हा

*“जीवन की तरह कला भी प्रतीति के लयात्मक लीला को प्रस्फुटित करता है।”**

*“कला अराजकता से पलायन है।”***

शमशेर के अधिकांश चित्रों का रचना-काल सन 1935-52 का कालखंड है।भारतीय चित्रकला के इतिहास में यह काल-खंड कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार भारत के विभिन्न भाषाओं के साहित्य में वह दौर स्वछन्दतावाद(रोमैंटिसिज्म)और यथार्थवाद के बीच संघर्ष का दौर था उसी प्रकार चित्र-कला में भी बंगाल स्कूल के राष्ट्रवादी पुनरुत्थानवादी सौंदर्यशास्त्र और *कलकत्ता समूह (1942-43) एवं* बम्बई के *प्रगतिशील कलाकार समूह* (प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रूप,1947) द्वारा घोषित *अंतराष्ट्रीयतावाद* के बीच भी यह संघर्ष का काल कहा जा सकता है।

बंगाल स्कूल का सम्बन्ध किसी कालखंड या क्षेत्रीय गतिविधि से न होकर एक शैली विशेष से है और इस शैली की अधिकांश महत्वपूर्ण कृतियाँ 1895-1947 के बीच रची गईं।[1] अवनींद्रनाथ ठाकुर,असितकुमार हालदार,समरेन्द्रनाथ गुप्ता,सारदाचरण उकील एवं नंदलाल बसु के चित्र-मुहावरे को यूरोपियन कला के प्री-रैफलाइट दौर से तुलनीय मानते हुए सुनील कुमार भट्टाचार्य ने लिखा है कि ये सभी कलाकार तरल रैखिक लालित्य,रंग के सपाट प्रतिपादन और रचना में तत्वों के बेलबूटेदार चित्रण का सहारा लेते हैं। अवनींद्रनाथ ने तो अपने चित्रों में पुरातन रंग देने के लिए जापानी रंग-कौशल को आयात किया । चित्र के विषय मुगल-इतिहास से लेकर प्राचीन राजपूत राजाओं के दरबारी वैभव,रामायण, महाभारत और बुद्ध के जातक-कथाओं से लिए गए हैं।इन कलाकारों को भारतीय कला का प्रगीत कवि कहा जा सकता है क्योंकि वे रंगों में रोमेंटिक भावनाओं को प्रतिबिंबित करते हैं,उनके रूप (फार्म) शैलीकृत हैं जिसे उनकी लम्बी उँगलियों,मृगनयनों और सर्वांगपूर्ण शारीरिक संरचनाओं के निरूपण में देखा जा सकता है। [2]

चित्रकला के प्रचार–प्रसार एवं बंगाल स्कूल की मान्यताओं के विकास के लिए अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्यों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नये–नये स्कूल खोले। के. वेंकटप्पा ने मैसूर में, देवीप्रसाद रायचौधरी ने मद्रास में, असित कुमार हालदार लखनऊ में, शैलेन्द्रनाथ दे ने राजस्थान में, पुलिन बिहारी दत्त ने बम्बई में, समरेन्द्रनाथ गुप्त ने पंजाब में और शारदाचरण उकील ने दिल्ली में चित्रकला के स्वतंत्र केंद्र स्थापित किए। दिल्ली के इसी केंद्र में शमशेर बहादुर सिंह ने चित्रकला सीखने के लिए सन् १९३५ में दाखिला लिया।[3] वे इस स्कूल में दो वर्षों तक रहे लेकिन बंगाल स्कूल की रूढ़ ‘गीतिमयता’, ‘भावुकता’ एवं

'साहित्यिकता' का असर उनकी कुछ ही कृतियों में लक्षित किया जा सकता है। यह सच है कि बंगाल स्कूल के अधिकांश चित्र पुनरूत्थानवाद से इतने बोझिल हैं कि उसमें कलाकार की निजी संवेदना एवं उनके अपने समय की कोई खरोंच को ढूँढ पाना प्रायः मुश्किल है लेकिन क्या 'नाक-नक्श-२' (३५), 'भक्कू' (४८), 'सुकेशिनी-२' (४८), 'श्रीमती सावित्री' (४८) जैसे बंगाल-स्कूल से प्रभावित शमशेर के चित्रों के बारे में भी यही कहा जा सकता है? क्या शमशेर के इन चित्रोंके बारे में भी यह कहा जा सकता है कि वह रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का रूपंकर प्रतिरूप है जैसा कि धुर्जटि प्रसाद मुखर्जी ने बंगाल स्कूल की कृतियों के बारे में कहा है ।[4]

यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि शमशेर के एक भी चित्र पौराणिक विषयों पर आधारित नहीं है ।बंगाल स्कूल से शमशेर ने जो सीखा वह है रेखांकन एवं जल रंगों को बरतने का कौशल । अपने राष्ट्रवादी उत्साह में बंगाल स्कूल ने तैल्य माध्यम का बहिष्कार करते हुए लघुचित्रों के तकनीक एवं जापानी 'वाश' का पुनरुद्धार किया था।[5] अकारण नहीं कि लघुचित्रों से प्राप्त कोमल एवं सुनम्य रेखाएँ और वाश तकनीक बंगाल स्कूल की पहचान बन गई थीं।नन्दलाल वसु ने लिखा है कि ''अवनीन्द्रनाथ के चित्रों में रेखाएँ अजंता या मुगल-फारसी चित्रों की तरह सपाट (फ्लैट) या लेखांकित (कैलिग्रेफिक) नहीं हैं।उनके चित्रों की ड्राईंग बहुत कुछ विलायती चित्रों जैसी प्रकृत्तवादी(नेचुरलिस्टिक)हैं,सादृश्यमूलक (रीप्रजेंटेश्नल)नहीं।फलस्वरूप उनकी रेखाएँ मूलत: आकृति का गठन या नमूना (माडलिंग) दिखलाने के लिए ही हैं ।ठीक मुगल-चित्रों की तरह।''[6] यही बात शमशेर के रेखांकन के बारे में भी कमोबेश कही जा सकती है।

आनन्द कुमारास्वामी ने बंगाल स्कूल को,जिसे वे कलकत्ता के भारतीय चित्रकारों का आधुनिक स्कूल कहते हैं, राष्ट्रीय पुनर्जागरण का एक चरण माना है।उनके अनुसार जहाँ उन्नीसवीं शती के आरम्भिक सुधारकों का उद्देश्य भारत को इंग्लैंड बनाना था वहीं बाद के कर्त्ता एक ऐसे समाज की स्थापना या पुनर्स्थापना करना चाहते थे जिसमें भारतीय संस्कृति के अंतर्निहित या अभिव्यक्त आदर्श सांस ले सके ।[7] स्पष्ट ही इसकी परिणति 'पुनरुत्थान'में ही होनी थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर(1861-1941) ने इस खतरे को समझते हुए बड़ी तिक्त टिप्पणी की : ''जब हम भारतीय कला के नाम पर पिछली पीढ़ी की आदतों से उपजी कट्टरता को बड़ी उद्धत आक्रामकता से पोसते हैं तब हम दफ़्न शताब्दियों की राख से निकाली हुई विलक्षणता तले अपनी आत्मा का गला घोंट रहे होते हैं।ये जीवन के पल - पल परिवर्तित खेल के प्रति असंवेदित विकृत मुखाकृतियों वाले मुखौटों की तरह हैं।"[8] बंगाल स्कूल के पुनरुत्थानवाद के कटु आलोचक सिर्फ रवीन्द्रनाथ ही नहीं थे बल्कि देवेंद्रनाथ ठाकुर (1867-1938), यामिनी राय(1887-1972) और अमृता शेरगिल (1913-41)अपने-अपने तरीके से बंगाल स्कूल की सीमाओं को उजागर कर रहे थे। अमृता

शेरगिल ने तो स्पष्ट कहा कि
बंगाल पुनरुत्थान जैसा कि नाम में ही निहित है,भारतीय चित्रकला में पुनर्जागरण
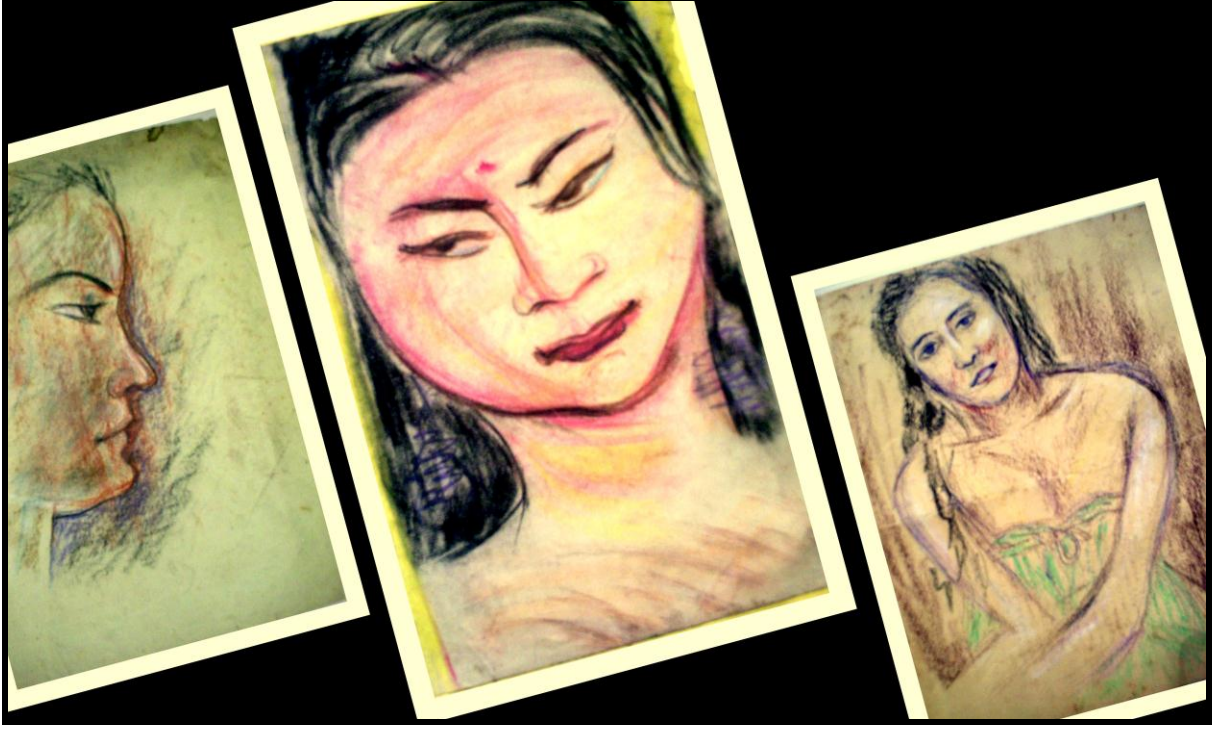
नाक-नक्श भक्कू श्रीमती सावित्री

(रिनेसाँ) ले आने का दावा करता है लेकिन समकालीन भारतीय चित्रकला में जो आज निष्क्रियता छाई हुई है उसका जिम्मेवार वही है।बंगाल स्कूल की मान्यताएँ सृजनात्मक चेतना को कुंठित एवं अपंग करने वाली साबित हुई हैं।[७] अमृता शेरगिल की मृत्यु के बाद कलकत्ता के आठ कलाकारों(मूर्तिकार प्रदोष दासगुप्त, कमला दासगुप्त एवं चित्रकार निरोद मजूमदार,शुभो ठाकुर,गोपाल घोष, परितोष सेन,रथिन मैत्रा, प्राण किशन पाल) ने बंगाल स्कूल के पुनरुत्थानवादी सौंदर्य-शास्त्र को छिन्न-भिन्न करते हुए विधिवत घोषणा-पत्र तैयार किया जिसमें कहा गया कि, "कला को अंतराष्ट्रीय एवं अन्योन्याश्रित होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, हमलोग कभी भी प्रगति नहीं कर सकते अगर हम हमेशा अपने प्रचीन गौरव को ही याद करते रहें और किसी भी मूल्य पर अपनी परम्परा से चिपके रहने को आवश्यक समझें।संसार के उस्ताद-कलाकारों द्वारा निर्मित कला की विपुल नयी दुनिया जो अनंत विस्तार एवं समृद्धि लिए हुए है,हमें इशारा करती हैं...हमें उन सभी का गम्भीर अध्ययन करना होगा,उनकी प्रशंसा करने की कला का विकास करना होगा और उससे हमें हर वो चीज ग्रहण करनी होगी जिससे हम अपनी परम्परा

एवं आवश्यकता के अनुसार उचित संश्लेष कायम कर सकें। यह हमलोगों के लिए

भक्कू

इसलिए और भी आवश्यक है क्योंकि हमारी कला अट्ठारहवीं शती से ठहरी हुई है। कला की दुनिया में भारत के बाहर पिछले दो सौ सालों में शिल्प और तकनीक के क्षेत्र में युगांतकारी अविष्कार हुए हैं। अत: हमलोगों के लिए यह परम आवश्यक है कि पश्चिमी अविष्कारों से फायदा उठाते हुए अपने इस गतिरोध को दूर करें।"[10] यह सोच सिर्फ बंगाल समूह के कलाकारों की ही नहीं थी बल्कि कहा जा सकता है कि उस वक्त की यह सामान्य सोच थी जिसे भारतीय पुनर्जागरण की विशेषताओं के रूप में लक्षित किया गया है। कलकत्ता समूह की बम्बई में सन 44 एवं45 की प्रदर्शनी से प्रेरित 'प्रगतिशील कलाकार समूह' की पहली प्रदर्शनी (1949) की विवर्णिका में फ्रांसिस न्यूटन सूजा ने लिखा कि "हम में किसी स्कूल या कला आन्दोलन को पुन: जागृत करने की कोई भी

महत्वाकांक्षा नहीं है।एक प्रबल रचनात्मक संश्लेषण तक पहुँचने के लिए हम मूर्तिशिल्प और चित्रकला की विभिन्न शैलियों का अध्ययन कर चुके हैं।"[11] यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि प्रगतिशील कलाकार समूह के अधिकांश कलाकार(सूजा,आरा,रज़ा,हुसैन,गाडे,बाकरे) आरम्भ में वामपंथी थे और शमशेर इन्हीं दिनों (45-46)बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी के कम्युन में रहते हुए 'नया साहित्य' का सम्पादन कर रहे थे।यूँ तो शमशेर के बम्बई प्रवास में उनके चित्र - कला-कर्म के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती लेकिन क्या इसे महज़ संयोग कहा जाय कि जब कृष्णाजी हावलाजी आरा फूलों और सैरों की अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़ कर 'सनकी' लोगों को चित्रित कर रहे थे ठीक इसी समय शमशेर के चित्र–लोक में 'पागल कलाकार' (१९४०), 'विक्षिप्त कवि' (१९४९), जैसी कृतियों का प्रवेश हो रहा था। धूसर एवं गहरे रंगों से शमशेर ने इन चित्रों में कलाकार की मनोव्यथा एवं उसके अंतर्द्वन्द्व को बड़ी गहरी अनुभूति से उभारा है। चारकोल के बीच में नीले एवं पीले रंग की रेखाओं का जो संयोजन है वह अजीब–से तनाव का अहसास कराती है। पीला रंग अपनी प्रकृति में ही विस्तार को अभिव्यंजित करने वाला रंग है जबकि नीला संकेन्द्रन का। चार–कोल के गहरे काले रंगों के बीच में इन दोनों रंगों को संयोजित कर शमशेर ने एक कवि–कलाकार के अस्तित्वगत तनाव को'पागलपन' एवं 'विक्षिप्ति' के रूप में, बड़ी करुणा से अभिव्यंजित किया है। प्रगतिशील कलाकार समूह का मूल्ययांकन करते हुए कैलास वर्मा ने ठीक ही कहा है कि ''समकालीन भारतीय कला को पैग की सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि उसमें कला को राष्ट्रीय दायरे से बाहर निकाला और पाश्चात्य कला की तकनीक एवं अभिव्यक्ति के समानांतर कला को अंतर्राष्ट्रीयतावाद से पूर्णतया जोड़ दिया।"[12] 'कलकत्ता समूह' की जो अंतर्राष्ट्रीयतावादी आकांक्षा थी वह पैग यानी 'प्रगतिशील कलाकार समूह' में फलीभूत हुई। कला में अंतर्राष्ट्रीयतावाद का अर्थ था प्रभाववाद,अभिव्यंजनावाद,घनवाद,अमूर्तनवाद और अतियथार्थवाद से प्रभाव ग्रहण करना और इस दौर के सभी कलाकार अपने-अपने

पागल कलाकार (2-9-40)　　**विक्षिप्त कवि (49-50)**

निजी मुहावरों की तलाश में'पश्चिमी अविष्कारों' से प्रतिश्रुत हो रहे थे।यह 'प्रतिश्रुति' भारतीय कला के विकास में कितनी सहायक या बाधक हुई,यह एक अलग प्रश्न है लेकिन यह सच है कि शमशेर भी अपने अन्य समकालीन चित्रकारों की तरह, पश्चिमी कला के किसी आन्दोलन या प्रवृत्ति विशेष से पूर्णतया एकाकार होने के बजाय 'पश्चिमी अविष्कारों'से अपने कला-कौशल को सँवारने की कोशिश कर रहे थे। पश्चिमी कला में 'प्रभाववाद' कई अर्थों में इतालवी पुनर्जागरण के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण अविष्कार था।प्रकृति की पल-पल परिवर्तित लीला को रंगीन प्रकाश और छाया के क्षणभंगुर खेल में पकड़ने का जो कौशल प्रभाववादियों ने अर्जित किए, वे अभूतपूर्व थे।यह विवाद का मुद्दा हो सकता है कि उनकी कृतियाँ जिस रंग-विज्ञान पर आधारित हैं वे कितनी सही हैं या गलत हैं[13] लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि वे देखने की, अवबोध की भिन्न प्रकृति की उपज थीं।प्रभाववादी अवबोध को आर्नल्ड हाउजर ने जार्ज मर्जेस्की के हवाले से यूँ समझाया है कि अगर किसी वस्तु को सामने रखे पर्दे के छोटे से छेद से देखें(जो छेद इतना बड़ा हो कि रंग तो दिखे लेकिन इतना भी बड़ा नहीं कि रंग के साथ-साथ वस्तु से उसके सम्बन्ध भी दिख जाय) तो जो हमें दिखाई देगा वह एक अनिश्चित,मँडराता

आभास होगा और यह उस रंग-प्रकृति से बिल्कुल भिन्न होगा जो हम आदतन किसी वस्तु से जोड़कर देखते रहे हैं।

झूसी में गंगा के किनारे एक तथ्य-फलक

और इस दृष्टि से, अग्नि का रंग अपनी दीप्ति,रेशम का रंग अपनी कांति और जल अपनी पारदर्शिता खो देता है। प्रभाववादियों के यहाँ रंग किसी वस्तु का ठोस गुण न होकर एक अमूर्त,अशरीरी,अभौतिक घटना की तरह प्रकट होते हैं मानो वे स्वयं-में-रंग हों।[14] शमशेर के दो ऐसे चित्र मिलते हैं जिसमें इस प्रकार के प्रभाववादी तकनीक का बखूबी प्रयोग हुआ है--- ' झूसी में गंगा के किनारे एक तथ्य-फलक' (१९५२-१९५३) और 'आइने में शमशेर' (१९५०) में रंग और प्रकाश का वही नेत्रपटलीय परिणाम दिखाई पड़ता है जिसे प्रभाववादी चित्रकार अपना लक्षय मानते थे।

आइने में शमशेर (१६५०)

हिस्पानी चित्रकार गोया(1746-1828) का कहना था कि ‘‘प्रकृति में रेखा कहाँ है?मुझे तो केवल प्रकाशित व अप्रकाशित आकार दिखाई देते हैं----समतल जो निकट हैं और समतल जो दूर हैं। मुझे रेखाएँ एवं बारीकियाँ दिखाई नहीं देती।मैं व्यक्ति के सिर के बालों को नहीं गिन सकता,न उसके कोट के बटनों को।मुझे जो दिखाई नहीं देता वह देखने का मेरी कूची को कोई अधिकार नहीं।’’[15] शमशेर के इन दोनों चित्रों को देखकर एद्वार माने(1832-83) के उस कथन का याद आता है जब किसी मित्र ने उनके व्यक्तिसमूहों के एक चित्र को देखकर उनसे पूछा था कि इस चित्र में आपने किस व्यक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है तब उनका कहना था कि ‘‘किसी भी चित्र में सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है प्रकाश।’’[16] प्रकाश की इसी केन्द्रीयता को रेखांकित करते हुए हर्बट रीड ने कहा है कि प्रभाववाद प्रकृति की प्रगीतात्मकता या उसके रूपरंग की पूर्ण अभिव्यक्ति है,उस

सौन्दर्य के, जो पलछिन प्रकाश में अवतरित और तिरोहीत होते हैं।[17] शमशेर के इन चित्रों का सौन्दर्य पलछिन प्रकाश में अवतरित और तिरोहीत होने वाला सौन्दर्य है। लेकिन जहाँ प्रभाववादियों के प्रिज़्म प्रकृति के सातो रंगों की छटा और वैभव से निर्मित दिखाई देता है ,आइने में शमशेर महज दो रंगों के माध्यम से प्रतिबिम्बित होते देखे जा सकते हैं। क्या यह कम बड़ी उपलब्धि है? पश्चिमी कला का विकास, यूरोपीय पुनर्जागरण एवं प्रभाववाद के बाद इस महत्वकांक्षा से हुआ कि प्रकृति की अनुकृति के बजाय उसकी पुनर्रचना की जाय। सेजाँ (1839-1906) के यहाँ प्रकृति की पुनर्रचना है।घनवादियों ने प्रकृति को विच्छेद कर विश्लेशन करने का काम किया ।अतियथार्थवादियों ने प्रकृति के बाहरी यथार्थ को भेदकर उसके आंतरिक सत्य को उद् घाटित करने की कोशिश की। दादावादी स्वप्नों,दिवास्वप्नों और फंतासियों की दुनिया में नये मील के पत्थर ढूंढते रहे।अमूर्तनवादियों ने रूप और रंगों की अमूर्त बनावट के सहारे प्रकृति की अपनी नितांत निजी व्याख्या प्रस्तुत की।भविष्यवादियों ने चित्र की सामान्यत: स्थिर कला में देश और काल को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।[18]

शमशेर के अभिव्यंजनावादी चित्र

भारतीय कलाकारों का अभिव्यंजनावाद से परिचय जर्मन अभिव्यंजनावादियों द्वारा हुआ।[19] भारतीय कलाकारों का पश्चिमी कला से परिचय आरम्भ में मूलकृतियों के बजाय प्रतिकृतियों के माध्यम से हुआ लेकिन सन'22 में कलकत्ता में जर्मन अभिव्यंजनावादियों की एक प्रदर्शनी आयोजित हुई थी।यह भारत में यूरोपीय कला के
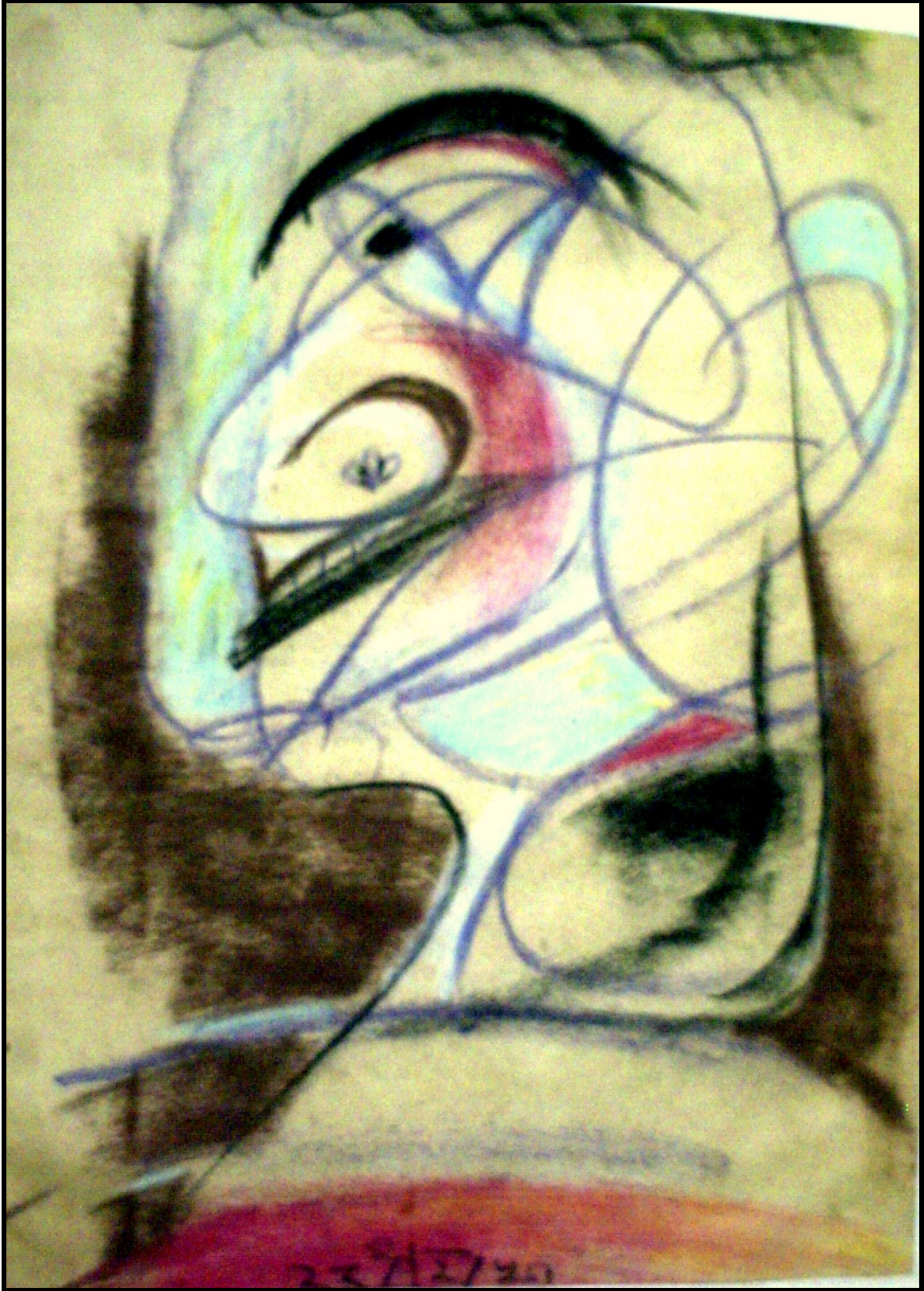
शीर्षकहीन

गैर-अंग्रेज़ उस्तादों की मौलिक कलाकृतियों की पहली प्रदर्शनी थी।[20] अगर प्रभाववादियों का संसार उल्लास और आनन्द का संसार था तो अभिव्यंजनावादियों की दुनियाँ भय,खौफ़ आतंक और विकृतियों से

भरी हुई थी।आश्चर्य नहीं कि कलकत्ता-समूह और प्रगतिशील कलाकार समूह के कलाकारों ने बड़े पैमाने पर अभिव्यंजनावादी मुहावरों को हस्तगत करने का प्रयास किया क्योंकि ये भी अपनी स्थिति,जहाँ तक भाव-दशा और सामाजिक अलगाव का प्रश्न है ड्रेसड्न के *डाय ब्रयूके* और म्युनिक के *डर ब्लौ रायटेर* के समान समझते थे। [21]

अभिव्यंजनावाद कला की एक प्रवृत्ति भी है और यूरोपीय कला के इतिहास का एक दौर भी।प्रवृत्ति के रुप में यह आत्मनिष्ठ कला है जो भावात्मक प्रभाव के लिए विरूपण और अतिरंजना का सहारा लेती है।यह आधुनिक यूरोपीय कला की वह प्रवृत्ति है जहाँ कलाकार अपनी आंतरिक सम्वेदना को अभिव्यक्त करने के लिए अप्राकृतिक तीखे रंगों और विरूपित रूपाकारों का सहारा लेते हैं।यह प्रवृत्ति वान गो(1853-90) से मानी जाती रही है और इस अर्थ में यह उन्नीसवीं शती के प्रकृतवाद के खिलाफ बगावत भी कही गई।सीमित अर्थ में इसे जर्मन कला-आन्दोलन विशेष के रूप में भी चिह्नित किया जा सकता है जो 1905 से लेकर 1930 तक सक्रिय रहा।[22] शमशेर इन चित्रों में प्राकृतिक रूपाकारों को अपनी भावनाओं के अनुरूप विरूपित करते दिखाई पड़ते हैं और अभिव्यंजनावादियों की तरह बेहद तीखे एवं आक्रमक रंगों के प्रयोग से भी नहीं हिचकते।नीले, काले एवं धूसर रंगों से शमशेर यहाँ किसी वस्तुगत यथार्थ को प्रस्तुत नहीं करते और न ही उस पर आधारित कोई अमूर्त धारणा का निरूपण ही करते जान पड़ते हैं बल्कि उनका उद्देश्य है अपनी आत्मगत सम्वेदनाओं को अभिव्यंजित करना। एडवार्ड मुंख (1863-1944) के चित्रों की तरह इनमें कलाकार के अंतर्मन की आवाजें हैं और जिसमें वाह्य रूपाकार का कोई महत्व नही। आश्चर्य नहीं कि अभिव्यंजनावाद ने अपना अगला क़दम अमूर्तन की दुनिया में रखा था और इस ओर पहला कदम उठाने वालों में वासिली कान्दिंस्की (1866-1944) थे जिन्होंने न सिर्फ अमूर्त अभिव्यंजनावादी कृतियाँ रचीं (उनकी कृतियाँ संगीत की रूपंकर समतुल्य मानी गई हैं[23])बल्कि इसका एक मुकम्मल सौन्दर्यशास्त्र भी रचने का प्रयास किया।‘कला में आध्यात्मिकता’ एवं ‘समतल में रेखा और बिंदु’ नामक पुस्तक में कान्दिंस्की ने प्राकृतिक वस्तुओं को सृजनात्मक स्वतंत्रता के लिए बाधक सिद्ध करते हुए यह मत प्रतिपादित किया कि “ रंगों व आकारों की सुसंगति का आधार मानवीय आत्मा से सोद्देश्य सम्पर्क ही हो सकताहै।”[24]

शमशेर के अमूर्त चित्र

शमशेर भी कहते हैं, " अमूर्त का विधान लेने वाली कला खास तौर से हमारे मन की अंदरुनी सच्चाइयों के जितना निकट होती है ,उतना -- उस ढ़ग से-- मूर्त यानी साफ सीधी सामने नजर आने वाली सच्चाइ नहीं होती क्योंकि हम अपनी भावनाओं में बहुत कुछ अपने अन्दर का ही जीवन जीते हैं।

"सामने नजर आने वाली चीज को देखते हुए हम दरअस्ल उसको देखते नहीं बल्कि अपने अंदर की संज्ञा या चेतना से पकड़ते हैं और जिस रूप में हम सामने नजर आने वाली चीज को पकड़ते हैं वह रूप हमारे मन और मस्तिष्क के लिए ज्यादा अर्थपूर्ण होता है।

"इसीलिए जब कलाकार उस सामने नजर न आने वाली अन्दर की छाप को हमारे सामने लाता है---रंगों के ताल-मेल रेखाओं की तरंगों और बहावों और गतियों में --- तो वह हमें चीजों के ज्यादा नजदीक ले आता है।हमें खुद अपनी छिपी हुई चेतनाओं से अधिक परिचित कराता है।"[25]

चित्र संख्या एक

शमशेर के अधिकांश अमूर्त चित्र आकृतिमूलकता के प्रत्यक्ष निषेध से उत्पन्न नहीं हुए हैं बल्कि वे किसी वस्तु- स्थिति या भाव-दृश्य के 'प्रत्यय' का साक्षात्कार जान पड़ते हैं।यही वजह है कि उनके चित्रों में रंग और रेखाओं के हार्मनी से एक ऐसा अवकाश उभरता दिखाई देता है जो स्वयं में एक संदर्भ होता है, किसी प्राकृतिक आकृति का प्रतिरूपात्मक चित्र नहीं। 'पूजा का एक संभव रेखागणित'(१९५०), 'एक आँसू की अगवानी में' (१९५१), 'कोंपल और कलियाँ ', (५०-५१), 'गोधूलि की बेला में दूर देहात का एक रेलवे स्टेशन',(४८-५०), 'चाँद की आँख और रक्तिम अधर' (१९५२), 'शकुन्तला के परी लोक में' (४८-५०), 'तपती चट्टानों को बाँधती एक कोमल जल-धारा' (१९५२),'एक बहुमंजली इमारत,चाँद और धावक' (५५) जैसी कृतियों में सिर्फ शीर्षक
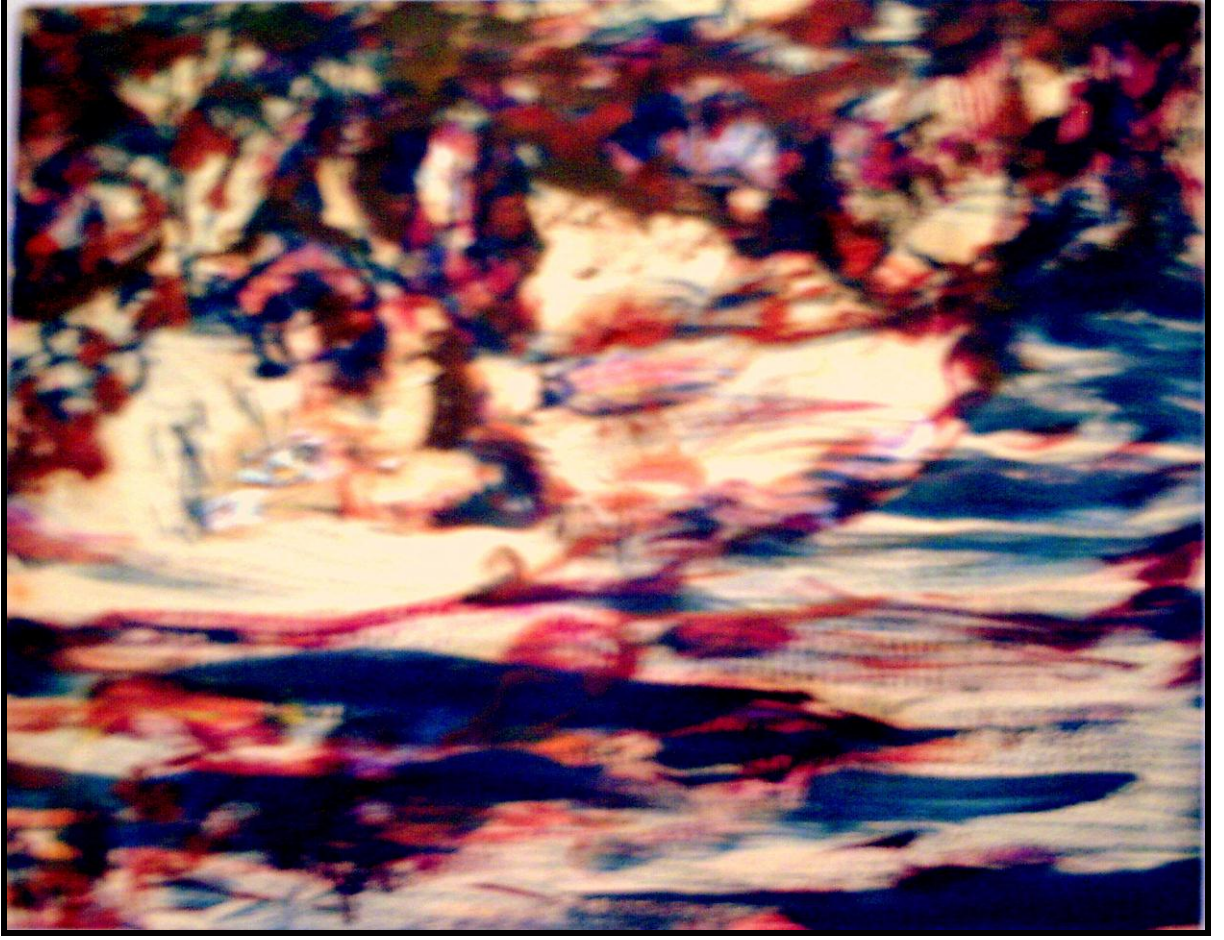
चित्र संख्या दो

ही दर्शक को किसी प्राकृतिक वस्तु के प्रत्यय या अवबोध से जोड़ सकता है नहीं तो शमशेर के अधिकांश ऐसे चित्र हैं जिसमें न कोई शीर्षक है और न पहचानने योग्य कोई प्राकृतिक वस्तु का आभास। क्या यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्र संख्या एक का शीर्षक है 'श्रोता और दर्शक' (५०-५१),और चित्र संख्या दो का 'शकुंतला के परी लोक में' (४८-५०)?इस सन्दर्भ में हर्बर्ट रीड का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि, "यथार्थवाद अभिव्यक्ति का स्वीकारात्मक रूप है जिसमें जीवन के त्रासदी तत्व को स्वीकार का भाव है लेकिन अमूर्तन एक ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया है जो शून्यता की नरक से लड़ रहा है, यह तीव्र व्यथा की ऐसी अभिव्यक्ति है जो आवयविक सिद्धांत पर अविश्वास करती है और मानव मन की सृजनात्मक स्वतंत्रता को स्वीकार करती है।"[26]

भारतीय कला में अभिव्यंजनावादी अमूर्तन के साथ ही साथ अतियथार्थवादी दौर भी गुजरा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद कलकत्ता समूह के हेमंत मिश्र

एवं मद्रास समूह के के.सी.एस. पनिकर तथा के.सी.पाईन यहाँ अतियथार्थवाद के अगुआ माने जा सकते हैं। 'अतियथार्थवाद' का आरम्भ पेरिस में 1924 में हुआ।इसके प्रथम घोषणा-पत्र में आन्द्रे ब्रेतों ने स्वप्न और यथार्थ जैसे प्रतीयमानत: परस्पर-विरोधी अवस्थाओं को भविष्य में अतियथार्थ (सुर्रियल) में एकरूप हो जाने की परिकल्पना की थी।उनके अनुसार अतियथार्थवाद एक प्रकार के शुद्ध मानसिक स्वयं-चालन का नाम है जिसके माध्यम से सोचने की वास्तविक प्रणाली को --सौन्दर्यशास्त्रीय व नैतिक तथा बुद्धि के किसी नियंत्रण से परे सिर्फ सोच से संचालित प्रणाली को अभिव्यक्त किया जा सकता है ।[27]यह यूरोप में फ्रायड के मनोविश्लेषण का उत्थान काल था और कलाकार यथार्थ को अतिक्रमित कर सकने वाले अवचेतन की बिम्ब-निर्माण क्षमता से अभिभूत थे।आश्चर्य नहीं कि इसकी प्रथम प्रदर्शनी की सूची में पाब्लो पिकासो, पाल क्ली, मेनरे, ज्याँ आर्प, माक्स अर्न्स्ट,डी शिरिको जैसे चित्रकार शामिल हुए और बाद में चलकर ईवे तांग्वी,आन्द्रे मास्सो,जान मायरो,साल्वाडोर डाली जैसे कलाकारों ने इसे अपनाया।यह यूरोपीय कला में,हर्बर्ट रीड के शब्दों में कहें तो विस्मय के पुनर्जीवन की स्थापना थी।[28]

शमशेर के अतियथार्थवादी चित्र

अतियथार्थवादियों ने कला में विस्मय के तत्व को दो तरह से अर्जित किया ----- एक यथार्थ को अयथार्थ ढ़ग से प्रस्तुत कर और दूसरे अयथार्थ को यथार्थवादी अंकन कर के।जहाँ पहले के उदाहरण के रूप में मायरो,आन्द्रे मांस्सो की रचनाएँ रखी जा सकती है जिसमें फूलों को आँख हैं और पेड़ो को कान ('जोता हुआ खेत') हैं वही दूसरा ढ़ग डाली एवं तांग्वी का है जहाँ जलता हुआ जिराफ है('जलता जिराफ'),सूखने के लिए डाले गये कपड़े की तरह लटकती हुई घड़ियाँ हैं ('स्मृति का आग्रह'), विचित्र किस्म के कुकुरमुत्ते एवं जादुई वनस्पत्तियाँ हैं जो काफ्काई संसार के प्रतिबिम्ब जान पड़ते है। वैसे अधिकांश अतियथार्थवादी कृतियों में इन दोनों शैलियों को मिश्रित ढ़ंग से बरता गया है।

भारतीय चित्रकला में अतियथार्थवाद का विकास सन सत्तर के दशक में हुआ विशेषकर जसवंत सिंह,सुल्तान अली,अनिल करंजिया,इश्वर सागरा,जे.स्वामीनाथन,गुलाम शेख,गनेश पाइन,जोगेन चौधरी, विकास भट्टाचार्य,ए.रामचन्द्रन,भुपेन खक्कर की रचनाओं में ; लेकिन शमशेर के अधिकांश सुर्रियल चित्रों की रचना सन अड़तालीस से लेकर चौवन के बीच हुई है।शमशेर आरम्भ से ही अतियथार्थवाद से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने एक स्थल पर स्वयं कहा है : " ...योरोप के जो चित्रकार थे और जो आन्दोलन अतियथार्थवाद का वहाँ पर चला था ,उसने बहुत गहराई से मुझको प्रभावित किया.. "[29] एक दूसरी जगह भी उन्होंने स्वीकार किया है कि "...यह जो सुर्रियलिस्ट पेंटर्स आते हैं हमारे यहाँ ,मेरे दिमाग पर छा जाते हैं ।वह हर्बर्ट रीड का जो सुर्रियलिस्ट संग्रह है ,उसमें पच्चासो जो प्लेट्स हैं ,वे न मालूम कितनी बार दिमाग से गुजरी होंगी,घूमी होंगी,बसी होंगी दिमाग में।"[30] आश्चर्य नही कि शमशेर के काव्यलोक एवं चित्रलोक --- दोनों में अतियथार्थ बिम्बों की इतनी बहुलता है। शमशेर की रचनाओं में'एक सुर्रियलिस्ट चेहरा' (१६५१), 'एक फ्रेम और उसके चारों ओर' (१६५०) 'पिजड़े के अंदर तोता रानी' (१६५0), 'बंदी गृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष' (१६५0),'रक्षक और तोता' (१६५०) जैसी कुछ रचनाओं को छोड़कर बाकी अतियथार्थवादी चित्र शीर्षकहीन हैं। इन चित्रों में सीने से खुलती हुई खिड़कियाँ हैं,गुलाबी तोते का बिल्लीनुमा नीलमुँहा रक्षक है,खूनी बालों वाला भेड़ियानुमा जानवर है ,नाक और आँख के बीचोबीच गालों पर दांत की पंक्तियाँ है,बन्द गाढ़े गुलाबी होठों में प्रवेश को आतुर नागमणि है और स्वप्न की कई स्थितियाँ हैं। वस्तुत: शमशेर के ये चित्र मानव अंतर्मन के गुह्यान्धकार के प्रतीक हैं। यहाँ अगर 'बंदी गृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष' (१६५0),और 'रक्षक और तोता' (१६५०) पर विचार करें तो इन दोनों चित्रों में उस ड्रामे की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना भी दिख सकती है जिसे नारी के अहं (इगो) एवं उसकी वास्तविक स्थिति के बीच होने वाले अंतर्विरोध से प्राय: उत्पन्न मान लिया जाता है। पिंजड़े में बंद पक्षी और उसके पास खड़ी स्त्री के बीच कई स्तरों पर हो रहे संवाद का अनुमान लगाया जा सकता है। रक्षक और पक्षी दोनों की नियति मानो

रक्षक और तोता **बन्दीगृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष**

उसके ‘अस्तित्व’ से अलग है और स्थिति की विडम्बना यह है, जैसा कि नारीवाद के सिद्धांतकार बताते हैं परतन्त्रता को स्वीकार करके ही जैसे स्वतंत्रता हासिल की जा सकती है।[31] पिंजड़े में कैद पक्षी की दुनिया स्त्री की अंदरूनी दुनिया है और ‘बंदी गृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष’ जिसकी शारीरिक अभिव्यक्ति है। यह बंदीगृह जितना बाहरी है उतना ही अन्दरुनी भी,जितना रंगीन है उतना शायद आकर्षक भी, जितना चेतन है उससे अधिक अवचेतन है... पितृतंत्रात्मक समाज में नारी की नियति को अभिव्यक्त करने का यह शमशेर का नितांत सुर्रियल मुहावरा है।

*** ******* ***

शमशेर के लगभग तीन सौ चित्र एवं रेखांकन हैं जिसमें सतहत्तर माउंट किए हुए हैं एवं एक सौ पच्चास सादे कागज पर बिना माउंट एवं फ्रेम के हैं ; इसके अलावे डायरी की दो कापियों में पच्चास के आसपास चित्र एवं रेखांकन हैं।[32] इन चित्रों को मुख्यत: तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है---- विषय-वस्तु के आधार पर, शैली के आधार पर और माध्यम के आधार पर ।विषय-वस्तु के आधार पर मानव-मुख-चित्र, व्यक्ति-चित्र(पोट्रेट),आत्म-चित्र(सेल्फ-पोट्रेट),निश्चल-चित्र(स्टिल-लाइफ़),निर्वसन-चित्र(न्यूड्स),भू-दृष्य-चित्र (लेंडस्केप्स)एवं अमूर्त-चित्र ; शैली के आधार पर यथार्थवादी,अतियथार्थवादी,अभिव्यंजनावादी तथा माध्यम के आधार पर जल-रंग व

स्याही से बने चित्र,पेस्टल - क्रियोन से बने चित्र तथा पेंसिल व पेन से बने रेखाचित्र के रुप में वर्गीकृत करके शमशेर के चित्रलोक को समझा जा सकता है।

**** ******* **

लियोनार्दो द विंसी ने कहा है कि एक अच्छे कलाकार का उद्देश्य दो चीजों का निरूपण करना होता है ----- एक मनुष्य और दूसरे उसकी आत्मा के अभिप्राय ।[33] शमशेर के अधिकांश चित्र मनुष्य-केन्द्रित हैं और मनुष्य की आत्मा के अभिप्रायों को वे शरीर की भाव-भंगिमाओं के बजाय मुखांकन (फेस-मैपिंग) के सहारे पकड़ने की कोशिश करते हैं। मुखांकन के कलाकार के सामने सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि वे बाह्य- सादृष्यता पर जोर दें या चरित्र की आंतरिक प्रकृति को अभिव्यंजित करने का प्रयत्न करें। कहा जाता है कि कैमरे के अविष्कार ने वैसे भी व्यक्ति-चित्र के 'रेट्रस्पेक्टिव फंक्शन' को निःशेष कर दिया था इसलिए अब तो चित्रकारों के सामने यही बचा था कि व्यक्ति के बाहृय रूपाकारों का यथार्थपरक अनुकरण के बजाय उसके आंतरिक दुनिया को अभिव्यक्त करें। फ्रायड के अवचेतन सिद्धांत का सहारा लेते हुए वियना में फ्रायड के समकालीन कलाकारों ने ---- आर्नल्ड सोनबर्ग, रिचर्ड गेर्सल, इगान सिले ने ठीक यही काम किया था जब वे व्यक्ति-चित्र-कला के 'प्रस्पेक्टिव फंक्शन' पर जोर दे रहे थे।[34]शमशेर कहते हैं : "पेंटिंग में कुछ नहीं रखा है। मुख्य बात है कि जो चीजें आपको प्रभावित करती हैं उसके भाव को आप अपने पेंटिंग में ले आएँ – रेखाओं के करेक्टनेस पर कोई जोर नहीं। मुख्य बात है भाव का आना उस पेंटिंग में।"[35] और यह भाव आए कैसे चित्र में? शमशेर अपने गल्प–चरित्र रामजीवन के माध्यम से यह नुस्खा प्रस्तावित करते हैं : "देखो यह दुनिया तुम्हारे पहचानने के लिए एक आइनाखाना है। गौर से इसमें हर तरफ देखो, एक–एक कर। ध्यान जमाकर। हिम्मत और सब्र और खुशी लेकर। देखो, इन आइनों के अंदर तुम्हारा अपना रूप किस–किस शक्ल में नजर आता है। क्या–क्या रंग, क्या–क्या चाल–ढाल, क्या–क्या छुपाव–बनाव, उठाव, उभार और गहराव, उसके हर–हर अंदाज हैं।.... और फिर आँखें बन्द कर लो। भवों के बीच में निगाह का एक बिन्दु बनाकर, उसके साथ अपनी निगाह के साथ अन्दर–अन्दर – वहीं डूब जाकर गहरे, और गहरे, और गहरे... दूर तक जहाँ तक भी जा सकते हो, जाओ....।"[36] क्या यह भारतीय या प्राच्य कला–दृष्टि है जिसे यूरोपीय कला–दृष्टि से बिल्कुल अलग माना गया है। हैवेल ने लिखा है कि यूरोपीय कला अकादमियों में छात्रों की अनुकरण शक्ति विकसित करने के लिए आँख की बड़ी कष्टदायक प्रशिक्षण की व्यवस्था है जबकि प्राच्य कलाकार अपनी रचनात्मक शक्ति के अभ्यास द्वारा ही अनुकरण क्षमता अर्जित कर लेता है।

मॉडल को देखकर चित्र बनाने के बजाय वह मन की आँख से चित्र बनाने की आदत डालता है।[37]

मानव-मुख-चित्र

शमशेर के मुखांकनों को तीन कोटियों में बाँटा जा सकता हैं--- मानव-मुख-चित्र,व्यक्ति-मुख-चित्र और आत्म-मुख-चित्र । जिस प्रकार साहित्य में उपन्यास,जीवनी और आत्म-जीवनी की विधा है जहाँ यथार्थ व कल्पना की प्रकृति का अलग-अलग अनुपात और मिश्रण नियत होता है; चित्रकला की इन उपकोटियों में भी आत्म-निष्ठता और वस्तु-निष्ठता, यथार्थ व कल्पना,अभिव्यंजना और सम्प्रेषण का एक ही अनुपात नहीं होता।मानव-मुख-चित्र और उपन्यास का विषय सामान्य व्यक्ति है,व्यक्ति-चित्र और जीवनी के केन्द्र में व्यक्ति-विशेष होता है ,वहीं आत्म-जीवनी और आत्म-चित्र का आधार स्वयं सर्जक है। स्पष्ट ही मानव-मुख -चित्र की तुलना में व्यक्ति-चित्र और आत्म-चित्र में विषय की,वाह्य-यथार्थ की सादृश्यता वाले पक्ष की कम अनदेखी की जा सकती है।अगर व्यक्ति-चित्रों में 'अश्क' (५०), 'राजेश्वर प्रसाद सिंह' (माया–सम्पादक) (५१), 'नरेश मेहता' (४६), 'सिरोही साहब' (४६), 'निगम'(४६), 'भैरव प्रसाद गुप्त' (५०),'प्रेमलता वर्मा' (५१), 'नागार्जुन' (८2), 'रंजना अरगड़े'(८४), के रेखाचित्रों की

मैडम हेयर डू

तुलना,नायिका, 'भक्कू','मैडम हेयर डू','रूप-लुटेरा','नाक-नक़्श','गायक', 'साँवले नाक-नक़्श: एक सौन्दर्य' जैसे मानव-मुख-चित्रों से करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकार के लिए व्यक्ति-विशेष या सामान्य व्यक्ति(मनुष्य-मात्र)दोनों क्रमश: विशिष्ट या सामान्य-दर्पण की तरह हैं जहाँ 'आत्मा के अभिप्रायों' को अलग-अलग तरीके से बेलौस होते देखा जा रहा है

।

व्यक्ति-चित्र

व्यक्ति- चित्र में जहाँ विशेष से सामान्य की ओर जाने का प्रयत्न है,वहीं मानव-चित्रों में, सामान्य में विशेष की तलाश है । वस्तुत: इन चित्रों में सभी चेहरे चित्रकार की भावनाओं में आलोकित एक व्यक्तित्व लिए हुए है । व्यक्ति-चित्र-कला में व्यक्ति को, एक विषय को, वस्तु में बदलना होता है और सभी कलाकार इसे अपने-अपने ढ़ग से करते हैं।अगर हेनरी मतिस(1869-1954) विषय के प्रति कलाकार के पूर्ण तादात्म्य की माँग करते हुए यह कहते हैं कि किसी रचना की अनिवार्य अभिव्यंजना आवयविक शुद्धता के बजाय इस बात पर निर्भर करती है कि कलाकार की विषय के प्रति भावनाएँ प्रक्षेपित हो पायी हैं या नहीं[38] तो दूसरी ओर सेजाँ के बारे में कहा जाता है कि उसने व्यक्ति-चित्रों और आत्म-चित्रों दोनों में व्यक्तिनिष्ठता(सब्जेक्टिविटी) के बजाय विषय को वस्तु के रूप में देखा --- उसने अपने सर को भी एक खोपड़ी या एक सेव की तरह बरता है[39]; क्या इन

दोनों के बीच का भी कोई रास्ता हो सकता है?
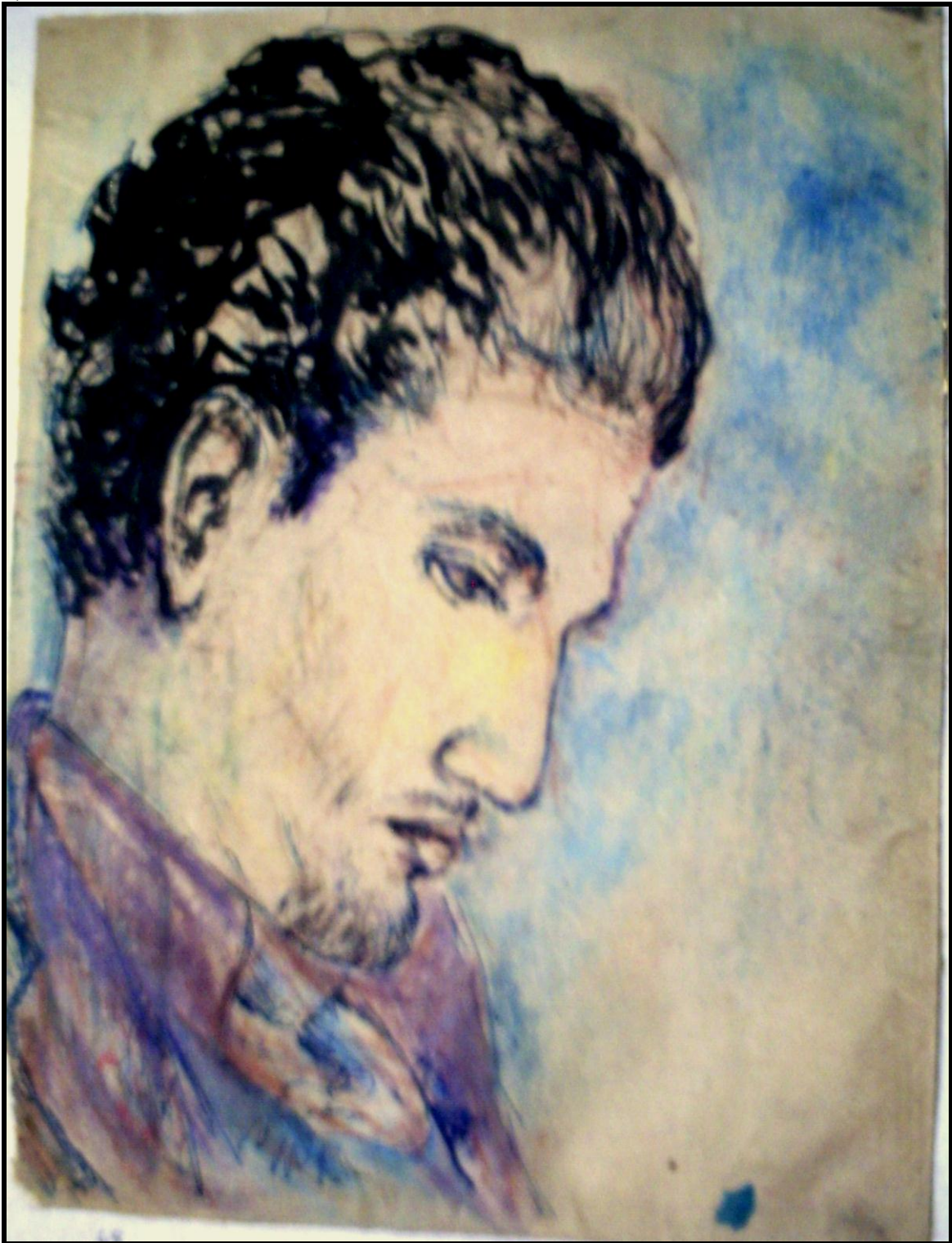
नरेश मेहता

आदर्श व्यक्ति-चित्र-कला की पारम्परिक धारणा पर विचार करते हुए आनन्दकुमारास्वामी ने लिखा है कि भारत मे दो भिन्न प्रकार की व्यक्ति-चित्र-कला रही है--- एक में अलौकिक,याजकीय और आदर्श व्यक्ति चित्रित हुआ है तो दूसरी में सांसारिक और भावप्रवण।[40]

आत्म –चित्र

शमशेर के चरित्र सांसारिक और भाव-प्रवण हैं लेकिन वे अपनी पूरी सहानुभूति प्रदान करने के बावजूद चरित्र के आंतरिक सच को उजागर होने से नहीं रोकते ---- अश्क आत्मस्थ होने के बावजूद अपनी दुनियादारी कहाँ छुपा पा रहे हैं न प्रेमलता वर्मा अपनी आशंकाएँ;नरेश मेहता चिंतनग्रस्त हैं तो रंजना अरगड़े दयाद्र जान पड़ती हैं।शमशेर चरित्र के व्यक्तित्व,भाव एवं प्रवृत्ति के सहारे व्यक्तिनिष्ठता को उजागर करना चाहते हैं।यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि शमशेर के सभी व्यक्ति-चित्र साहित्य से जुड़े लोगों के हैं और आत्म-चित्र तो खैर एक अनोखे कवि,गद्यकार एवं शिल्पी के हैं ही! एफ.आर.लीविस ने विलियम ब्लेक के बारे में कहा है कि " मैं स्वयं यह विश्वास नहीं करता कि ब्लेक के पास देने के लिए कोई सुसम्बद्ध मार्गदर्शक प्रज्ञा थी,लेकिन यह उनकी प्रतिभा के कारण है कि वे सम्पूर्ण अनासक्ति की अवस्था और परिणामत:सम्पूर्ण ईमानदारी(सिंसेयरिटी) हासिल करने में सफल होते हैं।उनमें एक विरल किस्म की अक्षतता(इंटेगरिटि) है और उतना ही विरल है जीवन के केन्द्रविन्दु के रूप में दायित्व-

बोध।उनके अनुभव सिर्फ उनके हैं तो सिर्फ इसलिए नहीं क्योंकि आत्मनिष्ठ अवबोध में ही अनुभव सम्भव है बल्कि देखने और समझने की उनकी कोशिश किसी भी प्रकार की
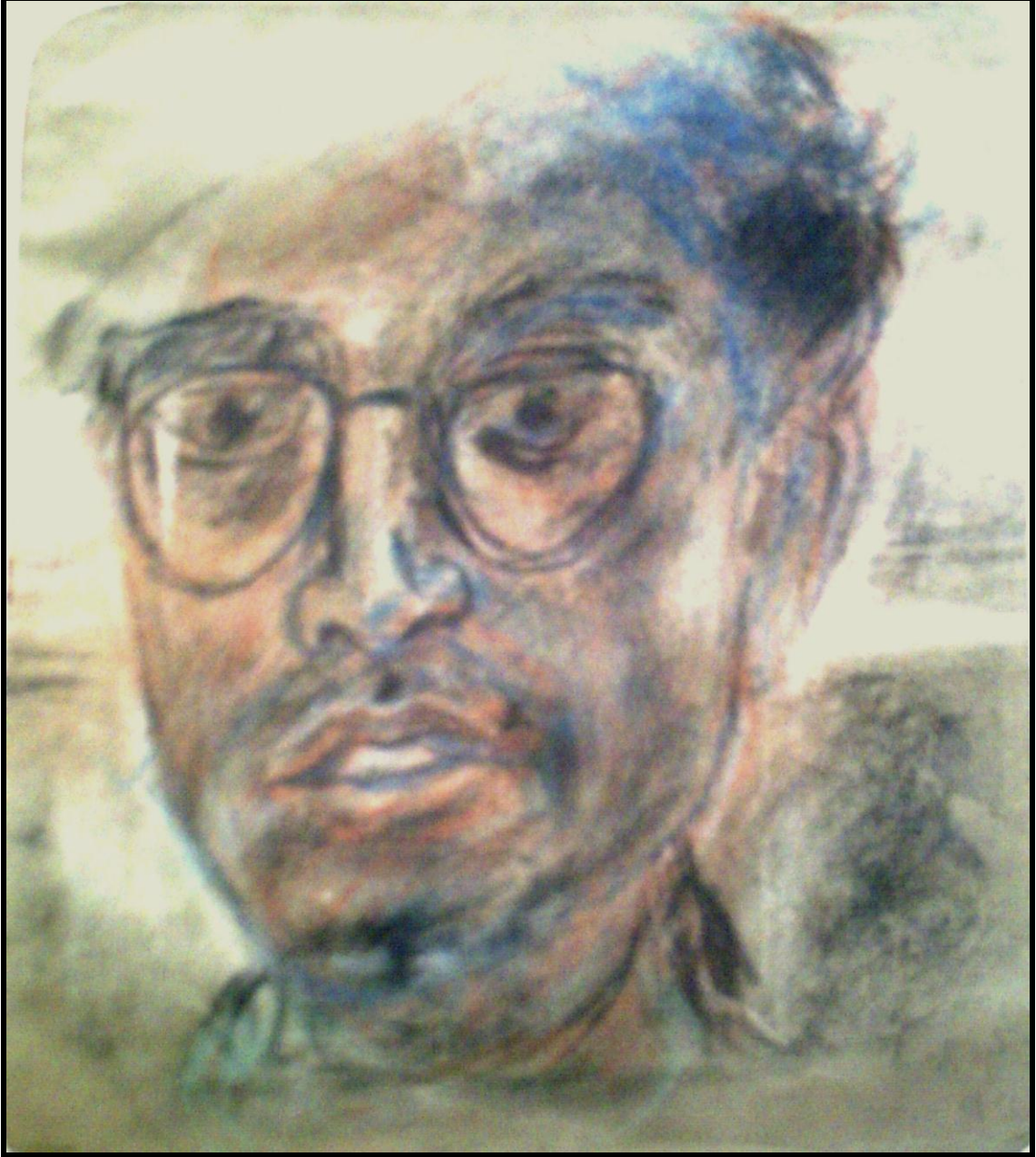
आत्म-चित्र

अहंमन्यता (ईगोटिज़्म) या आत्म-बिम्ब को बचाने की प्रेरणा से रहित है।"[41] यह बात शमशेर के बारे में भी उतनी ही सच जान पड़ती है---- विशेषकर उनके आत्म-चित्र प्रमाण हैं कि यहाँ कलाकार, इस माध्यम को, अपने अहं या आत्म-बिंब को चमकाने का ज़रिया नहीं मानता।शमशेर अपनी एक कविता में कहते हैं: "मैं/एक गुमशुदगी को प्यार करता हूँ/हमेशा प्यार करता रहा हूँ"(मोहन राकेश से एक तटस्थ बातचीत) वे इस

'गुमशुदगी' को ही अपने आत्म-चित्रों में मानो पकड़ना चाहते हैं लेकिन ऐसा वह 'अन्य'के मध्य स्वयं को गुम होता हुआ दिखाकर नहीं बल्कि अन्य की उपस्थिति को ही नकार कर करते हैं। अकारण नहीं कि उनके आत्म-चित्रों में सिवा उनके चेहरे के और कुछ नहीं--न प्रकृति,न वस्तु,न परिप्रेक्ष्य।

आत्म-चित्र

शमशेर के आत्म-चित्र एक अनोखे कवि,गद्यकार एवं शिल्पी के सेल्फ-पोट्रेट हैं। शमशेर इन चित्रों में दर्शकों को बेधक देखने के बजाय उनमें खुद को देखते जान पड़ते हैं ------ उनकी डूबी हुई-सी, बाहर के बजाय अंतर्मुखी,सोचती हुई- सी उदास आँखें दर्शकों को देर तक उद्वेलित करती हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस उद्वेलन का कारण चेहरे की 'भावमयता' नहीं बल्कि चेहरे की रेखाओं में उपस्थित आसपास का वह 'पर्यावरण' (एयर)है जिसे रोलाँ बार्थ ने अपनी अंतिम पुस्तक "कैमरा लुसिडा" में किसी व्यक्ति-चित्र के महत्ता की सबसे बड़ी कसौटी माना है;वे कहते हैं कि अगर चित्र विषय के आसपास के 'पर्यावरण' को नहीं पकड़ पाता तो वह एक मुखौटा के अलावा और कुछ नहीं।[42]अगर शमशेर के आत्म-चित्रों को गौर से देखें तो चेहरे के साथ साथ वह वातावरण भी दिखने लगता है जिसमें वह साँस लेता है ;चेहरे की रेखाएँ जो उदासी का वातावरण बुनती हैं वह साक्षात-संकेतित न होकर मानो अपने उस अचित्रित उत्स का संकेत करती हैं,जिसके बारे में शमशेर के चरित-नायक ने कहा है: " खुश हूँ कि अकेला हूँ,/ कोई पास नहीं है --- / बजुज़ एक सुराही के,/बजुज़ एक चटाई के,/बजुज़ एक ज़रा-से आकाश के,/ जो मेरा पड़ोसी है मेरी छत पर / (बजुज़ उसके,जोतुम होतीं--- मगर हो फिर भी यहीं कहीं अजब तौर से ।)" (आओ)

सिंथिया फ्रीलेंड के अनुसार व्यक्ति-चित्र प्राय: चार तरीकों से बनाये जाते रहे हैं----शुद्ध सादृश्य के सहारे,उपस्थिति के साक्ष्य के सहारे,व्यक्तित्व के आह्वान के सहारे या व्यक्तित्व के किसी अनोखेपन को उजागर करके।[43] शमशेर शुद्ध सादृश्य के बजाय व्यक्तित्व के किसी अनोखेपन को या जिसे 'स्व का अदृष्य कोना' कहा गया है,उसको उजागर करना चाहते हैं। इस अर्थ में वे चेतन से अधिक अवचेतन के कलाकार के रूप में सामने आते हैं। यहाँ यह याद करना उपयोगी हो सकता है कि योरप में नोवेल और पोट्रेट का उद्भव लगभग एक साथ ही हुआ और दोनों कला-रूपों का विकास मूलत: चरित्रों को क्रमश:सतह से गहराई(देह से मन,चेतन से अवचेतन)में पकड़ने की यात्रा रही है।[44]

शमशेर के आत्म-चित्र सभी एक ही काल के हैं :सन पचास से तीरेपन के बीच, इसलिए उनमें रेम्ब्राँ के आत्म-चित्रों जैसी क्रमिक भाव-यात्रा एवं कला-यात्रा ढूँढना बेकार होगा ।वैसे भी जो कलाकार यह मानता हो कि "पता नहीं कहाँ-कहाँ जोड़ हैं/ भूर्भुव स्व: के अपर पर रंग –विरंग के/आदि अंत आदि के...!"(पिकोसाई कला) उसके लिए तिथि का क्या अर्थ हो सकता है । शमशेर अपनी कविता और चित्र---दोनों में तिथांकित होने से बचने की कोशिश करते हैं ।

कला - इतिहास में दो चश्मी के बजाय एकचश्मी व्यक्ति-चित्र(प्रोफाइल) ज्यादा पसंद किये जाते रहे हैं । इसका कारण यह माना जाता है कि एकचश्मी व्यक्ति-चित्र सादृश्यता को ज्यादा शुद्धता से अंकित करने की क्षमता रखता है । शमशेर के एक भी आत्म- चित्र

एकचश्मी नही हैं। वैसे भी वे कला में कभी 'सादृश्यता' के पक्षधर नहीं रहे।वे कहते भी हैं कि " सामने नजर आने वाली चीज को देखते हुए हम दरअस्ल उसको देखते नहीं बल्कि अपने अन्दर की संज्ञा या चेतना से पकड़ते हैं और जिस रूप में हम सामने नजर आने वाली चीज को पकड़ते हैं वह रूप हमारे मन और मस्तिष्क के लिए ज्यादा अर्थपूर्ण होता है ।...इसीलिए जब कलाकार उस सामने नजर न आने वाली अन्दर की छाप को हमारे सामने लाता है --- रंगों के ताल-मेल रेखाओं की तरंगों और बहाओं और गतियों में--- तो वह हमें चीजों के ज्यादा नजदीक ले जाता है ।"[45] और अगर सामने नजर आने वाली चीज स्वयं कलाकार का 'स्व' हो तो अन्दर की छाप को सामने लाने का कोई पारम्परिक तरीका नहीं हो सकता ।

अनावृत्त चित्र

आधुनिक पश्चिमी कला में अनावृत- चित्र(न्यूड्स) बनाने की एक परम्परा रही है और वहाँ नेकेड (नग्न) और न्यूड(अनावृत) में फर्क किया जाता रहा है।केनेथ क्लार्क न्यूड पर
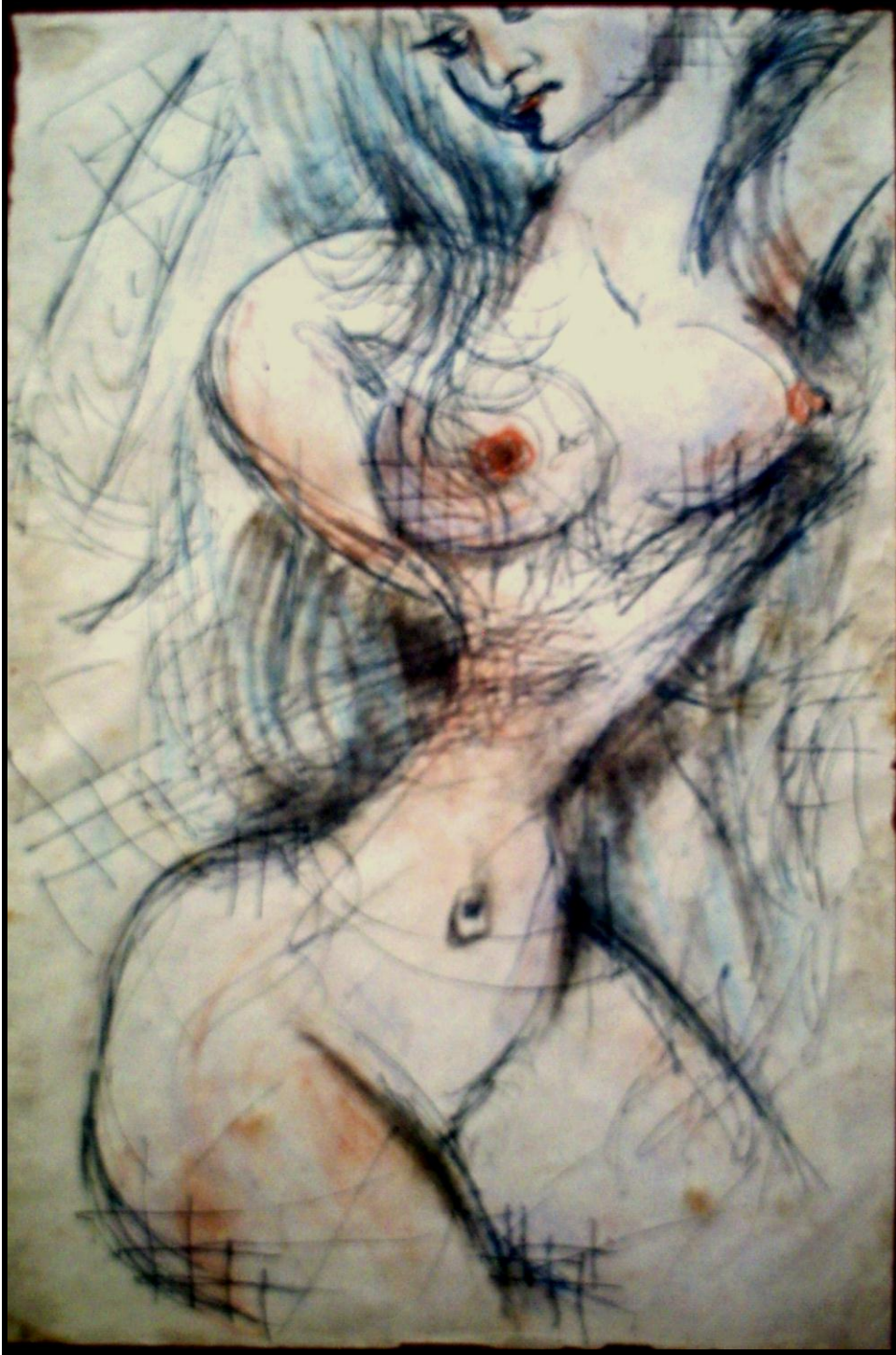
अनावृत चित्र

अपने विख्यात अध्ययन में कहते हैं, “नग्न(नेकेड)होने का अर्थ है विवस्त्र होना और इस शब्द में वह शर्म भी शामिल है जिसे उस स्थिति विशेष में हम सब महसूस करते हैं जबकि दूसरी ओर अनावृत(न्यूड) शब्द के परिष्कृत मुहावरे में ऐसी कोई असुविधा हम महसूस नहीं करते--- हमारे मन में इससे जो एक धुंधला बिम्ब उभरता है वह किसी

निरीह देह के गट्ठर का नहीं होता बल्कि एक सन्तुलित,समृद्ध एवं आश्वस्त करने वाले देह का, एक पुनर्गठित देह का होता है।"[46] देह का पुनर्गठन (द बाडी री-फोर्म्ड) ही अनावृत चित्र के मूल में है और भारत जैसे देश में जहाँ नग्न माडल को देखकर अनावृत चित्र बनाने की कोई परम्परा न हो; यह जुमला और भी मानीखेज़ हो जाता है।

शमशेर के अनावृत- चित्र भी हैं और रेखांकन भी; स्त्री के भी हैं और पुरुष के भी। शमशेर के 'कुँआरा बदन'श्रृंखला के पुरुष- शरीर पारम्परिक यूनानी देह की उर्जा और करुणा के बजाय भारतीय देह की प्रामाणिक सुभेद्यता और लोच को दर्शाते हैं
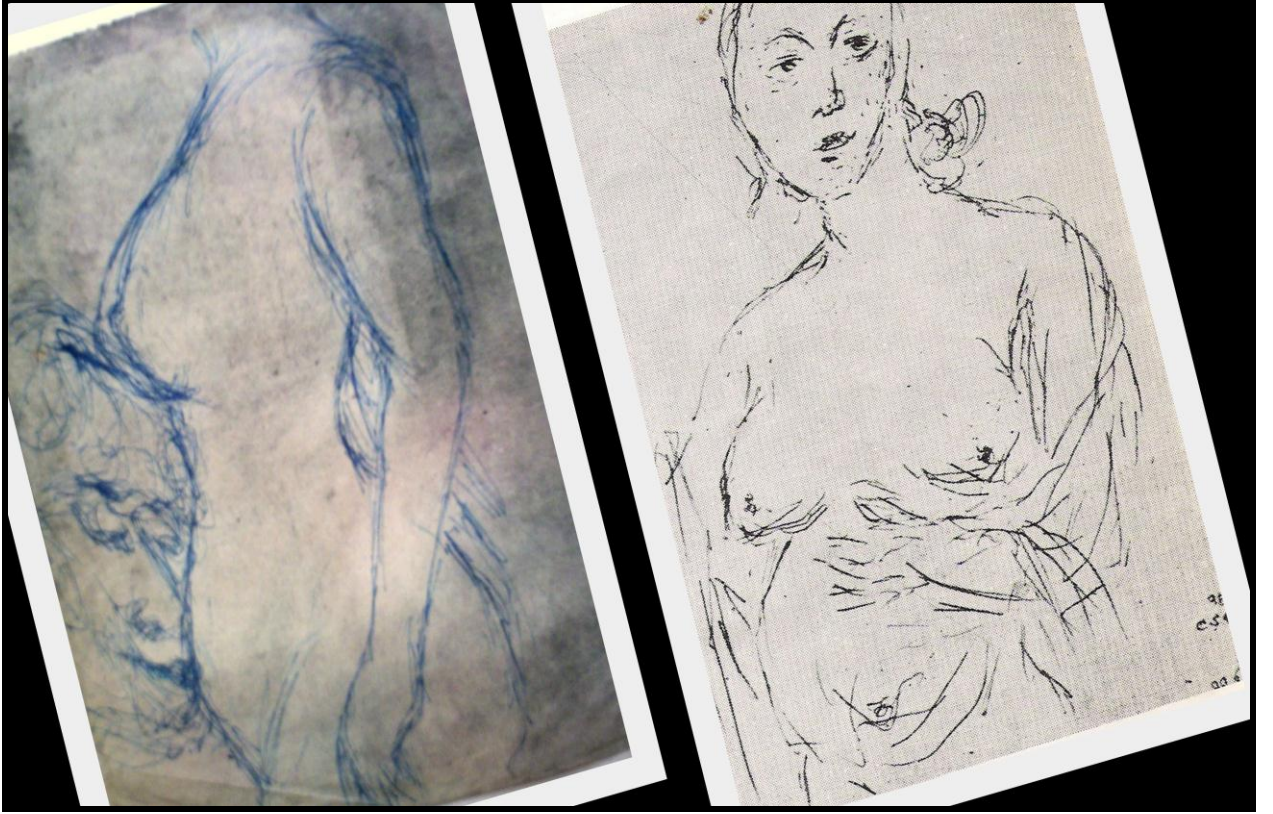
अनावृत्त-रेखाँकन

लेकिन स्त्री- देह पश्चिमी उस्तादों के अल्बम से निकले जान पड़ते हैं,उनकी देह-भाषा और आकृति परायी सी लगती है---   'वह लड़की' की देह-भाषा ही नहीं बल्कि मुखाकृति तक पश्चिमी है और 'उघारपन' का शरीर देह का चित्र न होकर, ऐसा लगता है कि देह के बारे में है।यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि शमशेर के अधिकांश अनावृत चित्र सिरविहीन हैं और जिनके सर हैं भी उनकी आँखें नहीं हैं और जिनकी आँखें हैं भी('वह लड़की', 'उघारपन' या 'सुकेशिनी-दो' के) वे मानो देखनेवालों को देखने के बजाय किसी

भी सम्भावित दर्शक की सम्भावना को ही इंकार करती जान पड़ती हैं।संक्षेप में कहें तो वे महज स्वतंत्र जैविक देह नहीं हैं।
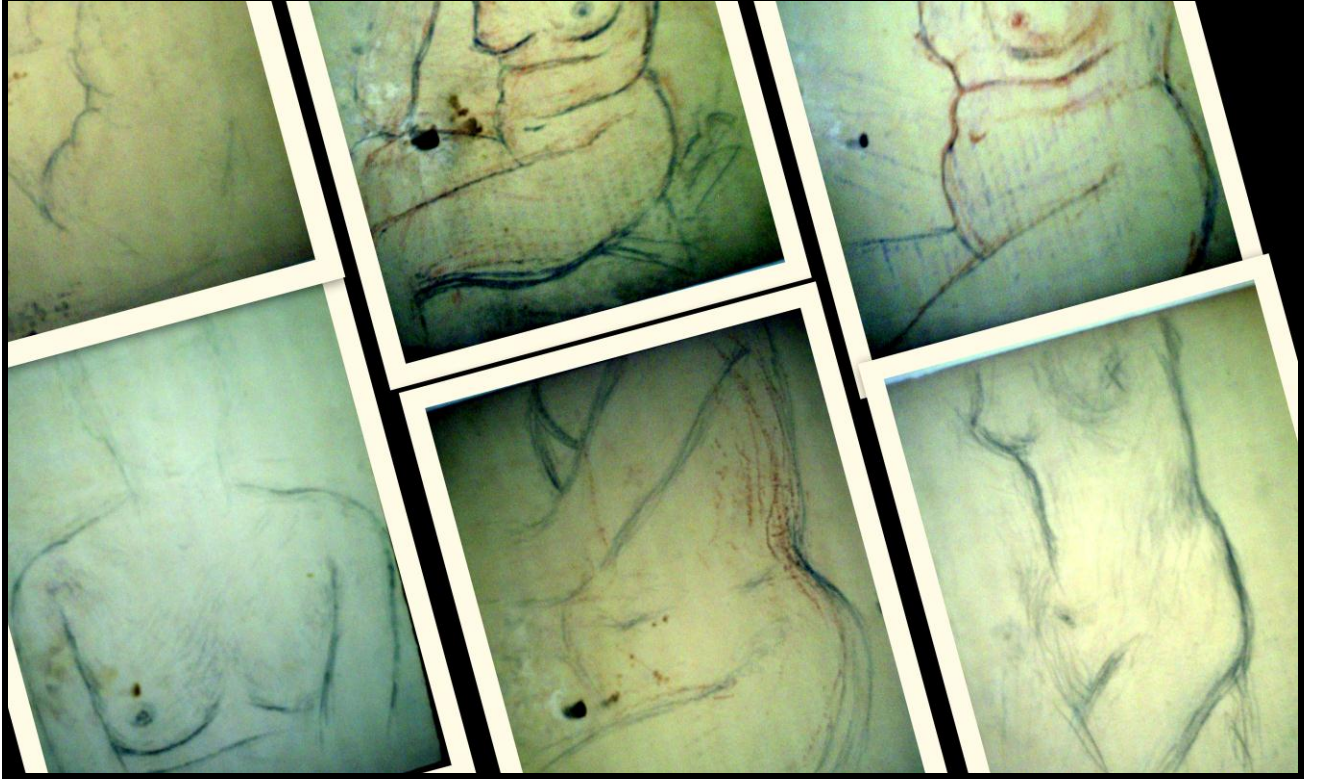
अनावृत- रेखांकन:कुँआरा बदन (५२-५३)

'कुँआरा बदन' श्रृंखला के चित्रों को देखने पर शमशेर की 'मकई से वे लाल गेहुएँ तलवे' कविता की ये पंक्तियाँ कौंध जाती हैं: "सूखी भूरी झाड़ियों में व्यस्त/चलती-फिरती पिंडलियाँ।... (मोटी डालें,जाँघों से न अड़े!)" कहाँ मातिस के रस्सी या खम्बा पकड़े या सीढ़ियों पर खड़े अनावृत बलशाली एक्शन हीरो[47] और कहाँ शमशेर के चित्र-नायकों का "यह वन शिव का स्थान।/ शांत ज्योति में लय है ध्यान।/नभ-गंगा की शक्ति /सदा बरसती यहाँ।..." (मकई से वे लाल गेहुएँ तलवे) शमशेर की निर्वसनाएँ जितनी आयातित लगती हैं पुरूष बदन उतना ही प्रामाणिक और प्राणवान--- रेखाएँ मानो बदन को छू रही हों।

व्यक्ति-चित्र की 'पृष्ठभूमि' जब 'अग्रभूमि' बन गई तब पश्चिम में निश्चल-जीवन(स्टिल-लाइफ) का उदय हुआ।[48] जिन मेज, कुर्सियों,चित्रों,फल की टोकरियों,किताबों,फूल-पत्तियों,खाद्य-अखाद्य सामग्रियों (सेव, नाशपाती,मरी हुई बत्तखें,मछिलयाँ आदि-आदि) के बीच मनुष्य बैठता था उसे वैसा ही छोड़कर वह चुपचाप कहीं चला गया था ---अब

केन्द्र में मनुष्य नहीं बल्कि जड़ संसार था। चित्रों की दुनियाँ में इसका आकर्षण प्रतिरूपात्मक चित्रण के कारण नहीं बल्कि नये नये आशयों(मोटिफ) और नये रूप की अभिव्यंजना के कारण था।इ.एच. गोम्ब्रिक का कहना सही है कि “सेव का कोई भी पेंसिल रेखांकन वास्तविक सेव की तरह नहीं दिखता और न ही पेंसिल के धूसर रंग को हम उदासी की अभिव्यंजना मानते हैं।दूसरे शब्दों में,माध्यम की अंत:शक्ति का ज्ञान भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि आशय का ज्ञान।स्टिल-लाइफ का कभी भी जन्म नहीं हुआ होता अगर चित्र को देखते हुए आरम्भिक संग्रहकर्त्ताओं ने शिल्प की अपेक्षित सीमाओं को नज़रअंदाज कर विषय की संरचना को मन में नहीं बिठाया होता ।दृष्टि-भ्रम के क्षेत्र से निकलकर कला की दुनिया में किसी रसिक को तभी प्रवेश मिलता है जब वह कलाकार के कौशल में साझीदारी कर पाता है।”49

निश्चल-जीवन (स्टिल-लाइफ़)

शमशेर के दो स्टिल लाइफ का ताल्लुक इलाहाबाद के एलेनगंजवाले उनके मकान के कमरा से है ---एक चित्र में कमरे के बन्द कपाट के अन्दर लकड़ी के मेज पर चाय की केतली,एक बड़ा सा कप, ग्लास और चीनी का एक छोटा सा डिब्बा है; किनारे किसी चीज पर रखा एक अधखुला बक्सा दिख रहा है;दूसरे चित्र में वही कमरा है वही मेज,वही कुर्सी लेकिन अब मेज

से चीजें हटा ली गई हैं और कुर्सी को मेज के पीछे से हटाकर आगे कर ली गई हैं और जिसके पीठ पर अब तौलिया पड़ा है ; दृष्य की संरचना अपेक्षाकृत वाइड ऐंगेल से होने के कारण

निश्चल-जीवन

पहले जहाँ एक ही बन्द कपाट दिख रहा था अब दोनों दिख रहा है और इसलिए अब किनारे बिस्तर का थोड़ा सा किनारा भी दिखने लगा है ।दोनों ही चित्रों में एक सूनापन है मानो किसी के आने की उत्कट प्रतीक्षा और तदनुसार बेचैनी है।ये दोनों ही चित्र सन् उनचास के हैं और उसी वर्ष की उनकी लिखी एक कविता 'आओ !' की कुछ पंक्तियाँ हैं: तुम

आओ,गर आना है /मेरे दीदों की वीरानी बसाओ;/शे'र में ही तुमको समाना है अगर /जिन्दगी में आओ,मुजस्सिम.../बहरतौर चली आओ।/ तुम आओ,तो खुद घर मेरा आ जाएगा/इस कोनो-मकाँ में,/तुम जिसकी हवा हो,/लय हो। मानो इन पंक्तियों की ही दृश्यात्मक प्रस्तुति हो ये चित्र!एक अन्य निश्चल जीवन के चित्र में बोतल में रखा फूल है और दूसरे में फल और सब्जी की एक टोकरी है ।यूँ तो स्टिल-लाइफ की पूरी परम्परा ही पश्चिमी है और भारत के लिए आयातित ही कही जायगी और सम्भवत: इसीलिए आनन्दकुमारास्वामी जैसे कला-आलोचक इस परम्परा की बेतरह आलोचना भी करते हैं[50] लेकिन यहाँ गोया के स्लायसेस,देलाक्रा के लोबस्टर,सेजाँ के सेव और नाशपातियाँ,कूर्बे के अनार,पिकासो के ब्रेड की जगह भारतीय प्याज, केला,सेव,तरबूज,दशहरी आम,मूली आदि दिखाए गए हैं।

भूदृश्य

शमशेर के भूदृश्य भी ख़ालिस भारतीय शहरी मध्यवर्गीय जीवन से वाबस्ता हैं --- इनमें इलाहाबाद और सुरेन्द्रनगर के उनके रिहाइशी घर है(या मकान हैं) ,आँगन है , कुछ पेड़

हैं, आँगन में सूखते हुए कपड़े हैं, दुआर पर खड़ी एक चारपाई है,हाता और बिजली के खम्भे और तार हैं और पेड़ का एक ठूँठ है--- कमरे के अन्दर जीवन अगर उदास और
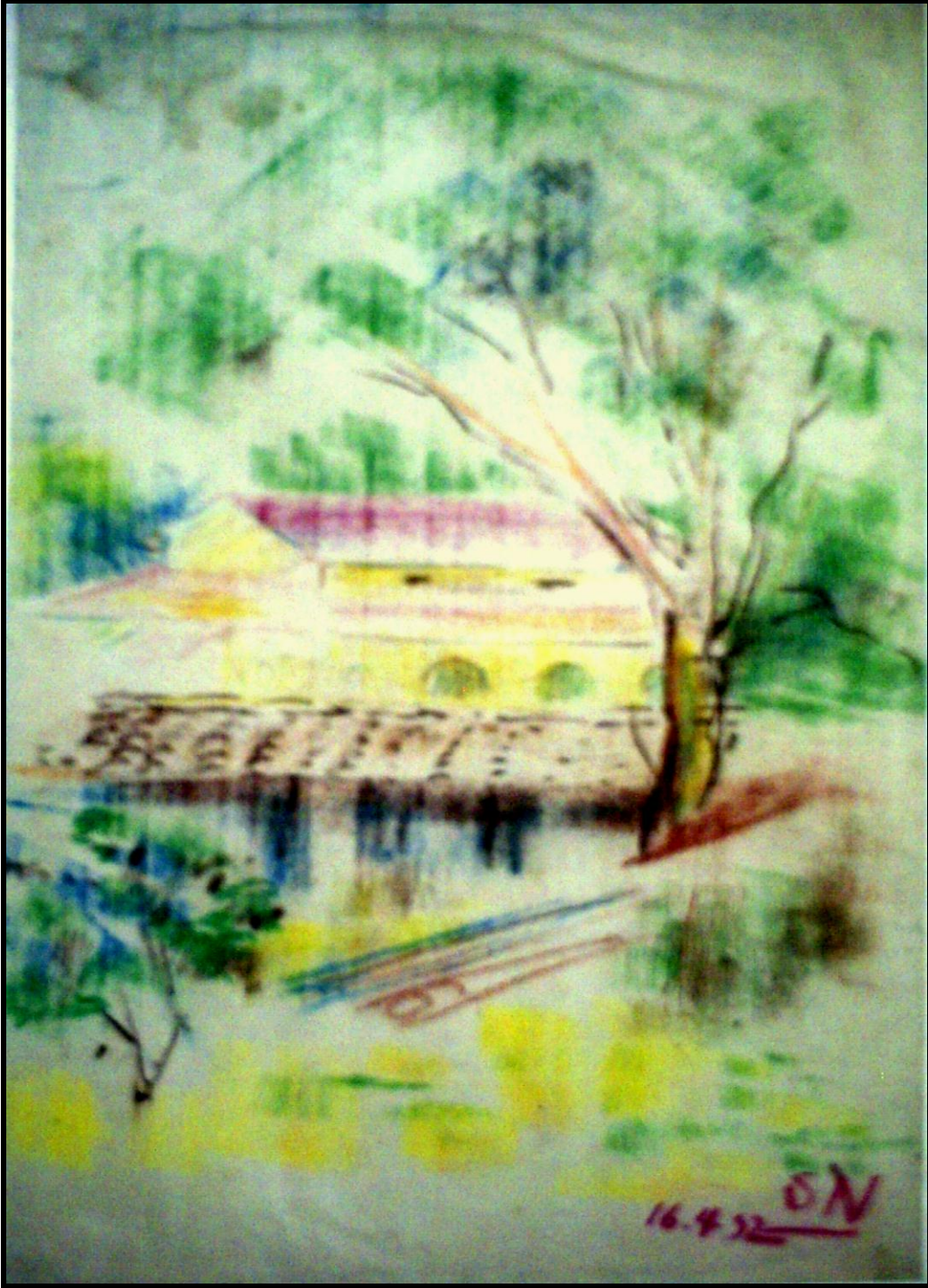
भूदृश्य

निश्चल था तो बाहर भी बहार नहीं आई हुई है। इटैलियन रिनेसाँ मास्टर्स के लैंड्स्केप में जो भव्यता,कवित्व,उदात्तता व ऐश्वर्य की चर्चा होती है[52] उसका यहाँ दूर-दूर तक नामो-

निशान नहीं है।सच तो यह है कि योरप में लैंड्स्केप पेंटिंग अनिवार्यत: एक रोमैंटिक कला के रुप में विकसित हुआ[53] जबकि इन चित्रों का आकर्षण इसका स्वतंत्र सौन्दर्य न होकर इसमें जिये जाने वाले जीवन का सौन्दर्य है। कवि की ही पंक्तियाँ हैं: "मकानात हैं मैदान/किस क़दर उबड़-खाबड़ /मगर/एक दरिया/और हवाएँ/मेरे सीने में गूँज रही हैं।"(एक नीला दरिया बरस रहा)

शमशेर के अधिकांश चित्र सामान्य कागज पर बनाये गये हैं।छोटे भाई तेज बहादुर सिंह के उपन्यास के बचे हुए कवर के पीठ पर कुछ चित्र बनाये गये हैं । जाहिर है चित्रकार को उपयुक्त कगज भी अभाव था ।कैनवस पर उनके एक भी चित्र नहीं हैं। जो दो तैल-चित्र हैं भी वे भी उसी उपन्यास के कवर के पीठ पर बनाये गये हैं ।रंग के लिए चारकोल,क्रियोन, सूखे पेस्टल ,जल-रंग एवं स्याही काम में लाये गये हैं।पेस्टल,क्रियोन,चारकोल के रंग को बरकरार रखने के लिए विशेष साज- सँभार की जरूरत होती है क्योंकि चित्र में एक बार धूल पड़ जाने पर बग़ैर उसे क्षति पहुँचाये हटाया नहीं जा सकता और किसी के साथ सटने पर इसके रंग भी चिपक जाते हैं इसलिए उसे तत्काल शीशे के अन्दर इस प्रकार बँधाया जाता है कि वह शीशे से भी न सटे । जल-रंग के लिए लाइनेन रैग-पेपर को उपयुक्त माना जाता है और वातावरण की नमी से बचाने के लिए शीशे में इसे बँधाने की जरूरत होती है।[54] लेकिन जहाँ सामान्य कागज भी उपलब्ध न हो और चित्र उष्णकटिबन्धीय वातावरण में वर्षों बगैर किसी साजोसँभार के यूँ ही पड़े रहे हों; यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कि समय और वातावरण ने इसके साथ क्या सुलूक किया होगा और फिर चित्र-कला के उपकरण महज साधन नहीं होते ----- कविता आप पेंसिल से लिखें या स्याही कलम से कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन यही बात चित्र-कला के बारे में नहीं कही जा सकती।उल्टे अब तो कहा यह जा रहा है कि " चित्रकला में आज मुद्दा मूर्त बनाम अमूर्त, ज्यामितिक बनाम आवयविक का नहीं रह गया है बल्कि आज चित्र-कला को नये ढंग से परिभाषित करने का एक नया-युग का आरम्भ हो रहा है। यहाँ तक कि स्पेस का मुद्दा जो चित्र-कला का अनंत-काल से शाश्वत मुद्दा रहा है ,केन्द्र से हट चुका है। अब चित्र-कला की नयी अभिव्यंजना का स्रोत चित्रकला के उपकरण और उसका हस्तकौशल है।"[55] ऐसे में शमशेर की चित्र-कला के उपकरणों की सीमाएँ स्वत:सिद्ध है और सम्भवत: इसे समझकर ही चित्रकार ने रेखांकन को अपना मुख्य अस्त्र बनाया होगा।यह सच है कि एक चित्रकार के रूप में शमशेर अपने रंगों के लिए नहीं बल्कि रेखाओं के लिए ही जाने जायेंगे लेकिन उनके रेखांकन पारम्परिक अवधारणा के अनुसार चित्र-कला के पूर्व-रंग नहीं हैं बल्कि अपने में पूर्ण हैं ।हर्बर्ट रीड ने एक बार रस्किन के हवाले से इतालवी उस्तादों के रेखांकनों पर विचार करते हुए बहुत सही टिप्पणी की थी कि जिस प्रकार शार्टहैंड को लेखन कला की उपयोगी तैयारी के रूप में नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार रेखाँकन को भी चित्र-कला

सीखने की तय्यारी के रूप में नहीं देखा जा सकता ।[56]शमशेर के यहाँ भी रेखांकन एक स्वतंत्र कला के रूप में उभरती दिखाई देती है ।रेखांकन अपनी प्रकृति में ही अपेक्षाकृत मितव्ययी कला है और यह शमशेर की 'बात बोलेगी'प्रकृति के अनुकूल है।अगर आप कुँआरा बदन श्रृंखला की रेखाएँ देखें तो वे चुनिन्दा रेखाओं के सहारे ही देह की लय को पकड़ लेते हैं लेकिन इससे रेखा-चित्र की संरचना से उनका ध्यान हट-सा जाता है ।अधिकांश रेखांकनों में वे सीधी रेखाओं के बजाय वक्र रेखाओं का सहारा लेते हैं । भारत के प्राचीन चित्रकारों ने ऐसी ही गुनगुनाती हुई रेखाओं से संगीत की अवस्था को प्राप्त कर लिया था।यहाँ शमशेर के रेखांकनों पर विख़्यात चित्रकार मकबुल फिदा हुसैन की एक टिप्प्णी याद की जा सकती है,उनका कहना था, "जिस आदमी ने ये रेखाएँ बनाई हैं और एक ही बार की उठी हुई कलम से बनाई है -- और रेखाओं में जो संतुलन और सधाव है,वो उसे कमजोर तो नहीं साबित करता।"[57] संतुलन और सधाव के अलावे शमशेर के रेखांकन की एक और बड़ी विशेषता है उसकी स्वत:स्फूर्तता। रेखाएँ न सिर्फ बड़ी उर्जस्वी हैं बल्कि वे कहीं भी अनम्य नहीं हैं और इनमें 'दृष्टि का वह सकेन्द्रन'भी दिखाई पड़ता है जो किसी भी प्रामाणिक रेखांकन की विशिष्टता मानी जाती है।[58]

पिकासो के एक एलबम को देर तक देखते रहने के बाद शमशेर ने एक कविता में पिकासोई कला को कुछ यूँ परिभाषित किया है: "जीवन की तुला में/ प्राणों का संयमन/सहजतम एक अद्‌भुत व्यापार/सरलता का हमारी ही तरह / कैसा दुरूहतम स्पष्टतम..."(पिकासोई कला) यहाँ दुरूहतम, स्पष्टतम का विलोम नहीं है बल्कि उसका विशेषण है या दोनों ही सरलता के विशेषण हैं जो सहजतम का पर्याय है ।कविता के इस अंश में सहजता, सरलता, दुरूहता, स्पष्टता का जो समीकरण इंगित किया गया है वह स्वयं शमशेर की कला के लिए काम्य रहा है और जिसे प्राप्त करने के लिए किये गये प्रयास को ही वे कला मानते रहे हैं।शमशेर की चित्र-रचनाएँ उक्त समीकरण का संधान कर रहे उद्यम की परिणतियाँ ही कही जा सकती हैं ।अकारण नहीं कि वे अपनी एक कविता में जोर देकर कहते हैं:"कला प्रयास,प्रयास/ केवल प्रयास प्रयास प्रयास है..." (माडल और आर्टिस्ट) क्या शमशेर की चित्र-कला केवल प्रयास है या इसे एक सार्थक प्रयास कहा जा सकता है ?

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

* मुल्क राज आनन्द,पेंटर रवीन्द्रनाथ टैगोर,अभिनव पब्लिकेशंस,डेल्ही,1985,पेज 19 पर उधृत
** हर्बर्ट रीड,द मीनिंग आफ आर्ट, रूपा एंड कम्पनी,कलकत्ता,1992,पेज 42-43

1.जया अप्पासामी,अवनिन्द्रनाथ टेगोर एंड द आर्ट आफ हिज टाइम्स,ललित कला अकादमी,न्यू डेल्ही फर्स्ट एडिसन1968पृ1-2.

2.सुनील कुमार भट्टाचार्य,ट्रेंड्स इन मोडर्न इंडियन आर्ट , एम.डी.पब्लिकेशन प्रायवेट लिमिटेड,न्यू डेल्ही ,फर्स्ट पब्लिश्ड 1994,पृ.15

3."1935 में पत्नी की मृत्यु के बाद मैं दिल्ली चला आया और यहीं पर शारदा उकील कालेज 'ज्वाइन' कर लिया। बँगाल स्कूल की नींव शारदा चन्द्र उकील ही ने डाली थी।कालेज में वही मुख्य चित्रकार थे। वह हृदय से भक्त कलाकार थे।उस समय उन्होंने महाभारत प्रसंग पेंट किए।'कर्ण-तपस्या' शीर्षक से एक पेंटिंग बनाई।लक्ष्मी नारायण मन्दिर भी उन्होंने पेंट किया। "शमशेर,आजकल,1993,पृ. 18

4.विनायक पुरोहित,आर्ट्स आफ ट्रांजिसनल इंडिया,वोल्यूम टू,बोम्बे पोपुलर प्रकाशन,बोम्बे,1988,पृ.726 पर उद्धृत

5.विवान सुन्दरम,द ट्रेडिशन आफ द मोडर्न , इन जोसेफ जेम्स (एडिटेड) आर्ट एंड लाइफ इन इंडिया, आइ.आइ.ए.एस.शिमला एंड बी.आर पब्लिशिंग कोर्पोरेशन,डेल्ही, फर्स्ट पब्लिश्ड, 1989.पृ.71

6.नन्दलाल वसु.दृष्टि और सृष्टि,विश्वभारती ग्रंथन विभाग,कलकत्ता,प्रकाश भाद्र 1398 बंगाब्द,पृ.129-30

7.आनन्द कुमारास्वामी,आर्ट एंड स्वदेशी,मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रायवेट लिमिटेड,न्यू डेल्ही,सेकेंड एडिसन,1994,पृ.116

8.प्राण नाथ मागो,कंटेम्पोररी आर्ट इन इंडिया,नेशनल बुक ट्रस्ट,इंडिया,फर्स्ट एडिशन 2001,पृ.60 पर उद्धृत

9.वही पृ.

10.वही पृ.63-64

11.समकालीन कला,नवम्बर'84/ मई'85,संख्या 3-4,पृ.13 पर कैलाश वर्मा का आलेख प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रूप : एक मूल्यांकन,

12.वही,पृ.16

13.हर्बर्ट रीड,द फीलासफी आफ मोडर्न आर्ट,रूपा एंड कम्पनी,कलकत्ता,1992,पृ.75

14.आरनोल्ड हाउजर,द सोसल हिस्ट्री आफ आर्ट,वोल्यूम फोर,रूतलेज एंड कगान पाल,लन्दन मेल्बोर्न एंड हेंले,1962,पृ.163

15.र.वि.साखलकर,आधुनिक चित्रकला का इतिहास,राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी,जयपुर,प्रथम संसकरण,1971,पृ.59 पर उद्धृत

16.वही

17. हर्बर्ट रीड,द मीनिंग आफ आर्ट, रूपा एंड कम्पनी,कलकत्ता,1992,पृ.194

18.प्राण नाथ मागो,वही,पृ. 9

19. वही,पृ.81

20.शंखो चौधरी,इन रेट्रोस्पेक्ट,जोसेफ जेम्स(एडिटेड),वही,पृ.139

21.विनायक पुरोहित,वही ,पृ.732

22.इयान सिलवर्स,डिक्शनरी आफ आर्ट एंड आर्टिस्ट्स,ओ.यू.पी.फोर्थ एडिशन,2009.पृ.210.

23. हर्बर्ट रीड,वही,पृ.229-230

24.र.वि.साखलकर,वही,पृ.224 पर उधृत्

25.रंजना अरगड़े (सं),शमशेर बहादुर सिंह की कुछ और गद्य रचनाएँ,राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली.प्रथम संसकरण 1992,पृ.166

26.हर्बर्ट रीड,द फीलासफी आफ मोडर्न आर्ट,पृ.93.

27. वासिलिकी कोलोकोंत्रोनी,जेन गोल्डमेन,ओल्गा ताक्सीद्यु (सं),माडर्निज्म: एन एंथोलोजी आफ सोर्सेस एंड डाक्युमेंट्स,एडिनबरा यूनिवर्सिटी प्रेस,1998,में आन्द्रे ब्रेतों,सुर्रियलिज्म,पृ.308-309

28. हर्बर्ट रीड,वही,पृ.141

29.शमशेर,मैं,मेरा समय और रचना-प्रक्रिया,सापेक्ष,अंक 30, पृ.इक्कीस बाइस,

30.नेमिचन्द्र जैन और मलयज से शमशेर की बातचीत,अशोक वाजपेयी,(सं),पूर्वग्रह,जनवरी-अप्रेल 1976,पृ.19

31"द ड्रामा आफ वुमन लाइज इन दीस कंफ्लिक्ट बिट्वीन द फंडामेंटल एस्प्रेसन आफ एवरी सबजेक्ट (इगो)---हू आल्वेज रेगाड्स द सेल्फ एज द एशेंसियल---एंड द कम्पल्संस आफ सिचुएसन इन व्हिच सी इज द इनइशेंसियल (पेज29) " सी चुजेज टू दिजायर हर इंस्लेवमेट सो आर्डेंटली दैट इट विल सीम टू हर द एक्सप्रेशन आफ हर लिबर्टी:सी विल ट्राय टू राईज एबव हर ेगचुएशन एज इनीशेंसियल आब्जेक्ट बाय फूल्ली एक्सेप्टिंग इट...." (पेज.653)
सीमोन द बुआ,द सेकेंड सेक्स,पीकाडोर क्लैसिक पैम बुक्स, 1988.

32. ये सभी चित्र प्रो.रंजना अरगड़े के पास हैं लेकिन शमशेर जी की जीवन-स्थितियों को देखते हुए कहीं और भी कुछ चित्रों की मौजूदगी से इंकार नहीं किया जा सकता।श्री नरेन्द्र शर्मा के पास भी रेखाचित्रों का एक अलबम है जो उनके विवाह के अवसर पर शमशेर जी ने उन्हें भेंटस्वरुप दिये थे।

33.आनन्द कुमारास्वामी,आर्ट एंड स्वदेशी,मुंशीराम मनोहरलालपब्लिशर्स प्रायवेट लिमिटेड,दिल्ली,1994,पृ.60 पर उद्धृत

34. एलिज़ाबेथ डायटोर(सं),लूकिंग इंटू पेंटिंग,फेबर एंड फेबर,लंडन,1989,पृ.121

35.प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक से एक अप्रकाशित साक्षात्कार से उधृत

36 शमशेर बहादुर सिंह, प्लॉट का मोर्चा, न्यू लिटरेचर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1951, पृ.73

37.आर.दे.एल.फुर्तादो,थ्री पेंटर्स,धूमीमल रामचन्द,न्यू डेल्ही,1960,पृ.10 पर उद्धृत

38.जे.क्लेन,मातिस पोर्ट्रेट्स,येल यूनिवर्सिटी प्रेस,न्यू ह्वेन,2001,पृ.23

39. एस.प्लाजमेन,इंट्रूडक्शन टू सेजाँ: द सेल्फ पोर्ट्रेट्स,यूनिवर्सिटी आफ केलिफोर्निया प्रेस,बर्कले,2001,पृ.10-11

40.आनन्द कुमारास्वामी,क्रिश्चियन एंड ओरियंटल फिलोसोफी आफ आर्ट,मुशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रायवेट लिमिटेड,देल्ही,1994,पृ.118

41. .डेनीस थोम्पसन(स.),द लीविसेस: रिकलेक्शन एंड एम्प्रेशन,कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,1984,पेज177

42. रोलाँ बार्थ,कैमरा लुसिडा:रेफ्लेक्शंस आन फोटोग्राफी,फेरर,स्ट्रास एंड गिरोक्श,न्यू योर्क,पृ.65

43. सिंथिया फ्रीलेंड के अनुसार कोई व्यक्ति-चित्र विषय को चार तरीकों में किसी भी एक तरीके से अभिव्यंजित कर सकता है--- शुद्ध सादृश्य के सहारे,उपस्थिति के साक्ष्य के सहारे,व्यक्तित्व के आह्वान के सहारे या व्यक्तित्व के किसी अनोखेपन को उजागर करके। देखें,सिंथिया फ्रीलेंड,पोर्ट्रेट्स इन पेटिंग एंड फोटोग्राफी,फिलोसोफिकल स्टडीज,2007,पृ.100

44. हर्बर्ट रीड,द मीनिंग आफ आर्ट,वही,पृ.43-46
45. रंजना अरगड़े(स.),शमशेर की कुछ और गद्य-रचनाएँ,अमूर्त कला,पृ.166
46.केनेथ क्लार्क,द न्यूड:अ स्टडी इन आइडियल फोर्म,प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस,प्रिंस्टन,1984,
47.लेज्लि बोस्ट्रोम एंड मार्लिन मलिक,री-व्यूइंग द न्यूड,आर्ट जर्नल,वोल्यूम 58,नम्बर 1,स्प्रिंग,1999,पृ.43
48.देखें,चार्ल्स स्टर्लिंग,स्टिल-लाइफ पेंटिंग फ्राम एंटिक्युटि टू द प्रज़ेंट टाइम,इंगलिस एडिसन,पियरे तिसने,पेरिस,1959
49.इ.एच.गोम्ब्रिक,मेडिटेशंस आन ए हाबी होर्स,फायदन प्रेस,लंडन,1963,पेज.न.99
50. देखें,आनन्द कुमारास्वामी,वही,पृ.126-127
51. इ.एच.गोम्ब्रिक,सिम्बालिक इमेज़ेज स्टडीज इन द आर्ट आफ द रिनेसाँ, फायदन प्रेस,लंडन,1972,पेज.न.129-30
52. हर्बर्ट रीड,वही,पेज.163
53. देखें, राफेल दोत्तोर,पेंटिंग टेक्निक्स, पर्नासस,वोल्यूम 10, न. 7 ,पृ.28-32
54.सांती शाविंसकी, एबाउट द फीजिकल इन पेंटिंग,लियोनार्दो,वोल्यूम 2,न.2,पृ.127
55. हर्बर्ट रीड,वही,पेज.131
56. त्रिलोचन कहते हैं,शमशेर की एक किताब *कुछ कविताएँ* जगत शंखधर ने जब छापी,तो ऐसे ही सामने बैठे थे एम.एफ. हुसैन। तो वो किताब उलटते उलटते उनकी रेखाएँ ही केवल दीख गईं उन्हें,और रेखाओं के बनाव पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने पूछा इस किताब का दाम क्या है? त्रिलोचन से रामकुमार कृषक की बातचीत,कल के लिए,शमशेर स्मृति अंक,मार्च 94,पृ.66
57. हर्बर्ट रीड,वही,पेज.132

*** इस लेख में प्रयुक्त शमशेर जी के सभी चित्र प्रो.रंजना अरगड़े के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं,मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ।**